कविता-निकुंज

(हिन्दी के आदि काल से लेकर उत्तर-मध्य कालीन प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह)

सम्पादक

अनन्त मराल शास्त्री,
एम० ए०, एम० ओ० एल०
(संस्कृत पंजाब)
एम० ए० (हिन्दी) पटना

अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज़
देहली, अम्बाला

मूल्य २॥)

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

विषय-सूची

भूमिका

हिन्दी साहित्य की धारा पिछले लगभग एक हजार साल से अपने विभिन्न किन्तु अनवरत रूप में प्रवाहित हो रही है। विक्रम की सातवीं शताब्दी में ही तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की रचना में प्रयुक्त अपभ्रंश के रूप में हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हो चुकी थी। भोज के समय में तो इसने शुद्ध साहित्य का रूप ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी में महाराज भोज के समय को साहित्यिक हिन्दी की उत्पत्ति का समय माना जा सकता है।

हिन्दी के साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देनेवाली प्रवृत्तियों के आधार पर इतिहासज्ञों ने एक हजार वर्ष के इस इतिहास को चार भिन्न-भिन्न युगों में बांटा है। इन्हें क्रमशः आदि काल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल के नाम से पुकारा जाता है। आदिकाल को वीरगाथा काल भी कहा जाता है। इस समय में वीर रस की कविताओं के बाहुल्य के कारण ही इसे यह नाम दिया गया है। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल को भक्ति काल, उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल और आधुनिक काल को गद्यकाल के नाम से पुकारते हैं।

आदिकाल की परम्परा में पहले डेढ़ सौ वर्षों की सभी रचनाएं दोहों में मिलती हैं। परन्तु जब मुसलमानों की चढ़ाइयां आरम्भ हुईं तो चारणों ने राजाओं की वीरता का वर्णन आरम्भ किया। ऐसी कथात्मक रचनाओं को रासो के नाम से पुकारा

जाने लगा। ये वीर गाथाएं प्रबंध काव्य और वीर गीत दोनों ही रूप में मिलती हैं। इस काल की साहित्यिक सामग्री कुछ असंदिग्ध है और कुछ संदिग्ध। असंदिग्ध सामग्री की भाषा अपभ्रंश है।

अपभ्रंश शब्द से जिस साहित्यिक हिन्दी का ग्रहण होता है उसमें हमें नीति, शृंगार, वीर आदि की कविताओं के अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्माचार्यों के उपदेश भी मिलते हैं। आगे चलकर लोकभाषा ने अपभ्रंश का स्थान लेना शुरू कर दिया। अमीर खुसरो और विद्यापति की भाषा में हमें उसके दर्शन जहां-तहां होते हैं।

संदिग्ध सामग्री में वीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो जैसे पुराने काव्य सम्मिलित हैं। साहित्यिक प्रबन्ध के रूप में इनमें सबसे प्राचीन पृथ्वीराज रासो ही है। दिल्ली से अंतिम हिंदू सम्राट् से सम्बन्ध होने के कारण इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। महाराज हम्मीर के समय से वस्तुतः वीरगाथा काल समाप्त हो जाता है उसके बाद उत्तर भारत में मुसलमान शासक जम कर बैठ गये। इसके परिणामस्वरूप जनता की भावधारा बदलने लगी। राजनीतिक पराजय ने उसको अधिक धर्म-परायण बना दिया। इसी समय से हिन्दी में भक्ति का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

भक्ति की विभिन्न पद्धतियों और तत्कालीन परिस्थितियों ने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में भक्ति की कई धाराओं को प्रवाहित किया। इनमें क्रमशः पहला स्थान निर्गुण उपासकों का है। उन्होंने उपासना के वाह्य उपकरणों का विरोध किया और नैतिकता तथा

अंत:करण की शुद्धि पर विशेष जोर दिया । कबीर, नानक, दादू आदि इसी परम्परा के सन्त कवि हैं । सूफी धर्म से प्रभावित कवियों ने हिन्दी में काव्य-रचना की एक अनूठी पद्धति को जन्म दिया जहाँ लौकिक कथा के रूप में उस प्रेमतत्त्व का वर्णन किया गया है जो ईश्वर को मिलाने वाला है । कुतबन, मंझन, उसमान, जायसी आदि कई इस धारा के कवि हैं । मलिक मुहम्मद जायसी का इनमें सबसे ऊंचा स्थान है ।

भक्तिकाल में राम-भक्त कवियों का अपना विशेष स्थान है । रामानन्द जी रामभक्ति के प्रचारक थे और कबीरदास, रैदास आदि सन्तों को उनका शिष्य होने का गौरव था । परन्तु राम-भक्ति को हिन्दी साहित्य में अपूर्व और अद्वितीय स्थान देने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को ही है । उनका रामचरितमानस हिंदी साहित्य का ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ नहीं है; संसार भर के साहित्य में उसकी जोड़ का ग्रंथ मिलना कठिन है। वे एक भक्त और कवि ही नहीं थे, वे एक महान् राष्ट्र-निर्माता थे । उनके मस्तिष्क में एक आदर्श समाज की रचना की भावना उग्ररूप में काम करती थी । रामभक्ति की इस परम्परा में बहुत से कवि हुए परन्तु तुलसीदास जी की टक्कर का दूसरा कवि कोई नहीं हुआ । हिंदी साहित्य को प्रभावित करने वाली दूसरी प्रवृत्ति कृष्णभक्ति को है । कृष्णभक्ति की परम्परा में हिन्दी के कई उच्चकोटि के कवि प्रादुर्भूत हुए हैं; जैसे सूरदास, मीरा, रसखान नंददास आदि । यद्यपि कृष्णभक्त कवियों ने रामचरित मानस जैसा कोई प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा परन्तु काव्यगत विशेषताओं की दृष्टि से प्रमुख कृष्णभक्त कवियों की रचना अद्वितीय है । भावों की कोमलता और कल्पना की उड़ान दोनों

ही दृष्टियों से इस काल की कविता उत्कृष्ट है। सूरदास और मीरा के पद स्वतन्त्र रूप में करोड़ों मानव-हृदयों को शांति प्रदान करते हैं। इसी काल में आचार्य केशव और रहीम जैसे उच्च कोटि के कवि भी हिन्दी में हुए।

कृष्णभक्ति की रचनाओं ने हिंदी कविता को प्रौढ़ता के शिखर पर पहुंचा दिया अब उसमें रस और अलंकार आदि का शास्त्रीय विवेचन आरम्भ हुआ। हिन्दी में काव्य रीति का ठीक ढंग से समावेश करने वाले पहले कवि आचार्य केशव ही हैं। परन्तु इस पद्धति का विकसित रूप प्राय: पांच वर्षों के बाद दिखाई पड़ा। संस्कृत साहित्य में इस विषय का वहुत विवेचन हो चुका था और हिन्दी के आचार्यों ने संस्कृत की परम्परा पर साहित्य-शास्त्र के इतिहास का ही मानो हिन्दी में फिरसे दूसरा संस्करण कर डाला। रीतिकालीन परम्परा की इस अखंड धारा में चिन्तामणि त्रिपाठी का स्थान पहला है। इस परम्परा के कवियों ने पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखकर फिर कवित्त या सवैये में उसका उदाहरण देने की परिपाटी बनाई जो खूब चली। साहित्य-शास्त्र का कविता के साथ इस प्रकार का गठ-बन्धन शास्त्रीय दृष्टि से कहाँ तक सफल हुआ यह कहना कठिन है परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि कवियों का इस प्रकार के झमेले में उलझना कविता के स्वाभाविक विकास के लिये कभी अच्छी बात नहीं हो सकती। इससे कवि की प्रतिभा संकुचित घेरेमें बँध जाती है और उसमे किसी प्रकार की युगांतरकारी रचना की आशा नहीं की जा सकती। दूसरी ओर यह भी ध्यान देने

की बात है कि आचार्यत्व के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है उसका कवि में होना आवश्यक भी नहीं है। हिंदी साहित्य की प्रगति की दृष्टि से देखा जाय तो रीति काल का यह आचार्यत्व और कवित्व का पारस्परिक मिलन साहित्य के विस्तृत विकास में बाधक ही सिद्ध हुआ है।

इस काल में यद्यपि वीर रस की रचनाएं भी हुईं किन्तु प्रधानता शृंगार की ही रही है। इस काल के मुख्य कवि बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर और घन-आनन्द हैं।

हिंदी साहित्य में काव्य रचना की यह परम्परा यद्यपि अब भी जारी है परन्तु उसका युग रीति काल के साथ ही समाप्त हो जाता है। पद्य का एकच्छत्र साम्राज्य गद्य के साथ समाप्त हो जाता है।

हिंदी साहित्य के समस्त साहित्य का सिंहावलोकन करने पर हमें दिखाई पड़ता है कि उत्तर भारत के विस्तृत हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में साहित्य के लिये लगातार एक ही बोली का प्रयोग नहीं हुआ। आदि काल में हमें वीर-गाथाओं में अपभ्रंश और देशभाषा दोनों के रूप दिखाई देते हैं। खुसरो की कविता में खड़ी बोली स्पष्ट रूप से झांकती है और विद्यापति की रचना में हमें मैथिली का प्रारम्भिक रूप मिलता है।

भक्तिकाल में व्रजभाषा, पूर्वी हिन्दी और अवधि इन तीन भाषाओं की रचनाएं मिलती हैं। कबीर की रचना में पूर्वी का पर्याप्त सम्मिश्रण है, सूरदास आदि के कृष्णभक्त कवियों की प्राय: सभी रचनाएं प्रधानतया व्रज भाषा में हैं और जायसी तथा गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएं प्रधानतया अवधि में। परन्तु इन सभी प्रादेशिक भाषाओं में प्रमुख स्थान व्रज भाषा का ही

है। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने व्रज भाषा को ही अपना लिया और यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय व्रजभाषा ही कविता के लिये सर्व सम्मत भाषा वन गई।

हिंदी गद्य के विकास का अर्थ खड़ी बोली का विकास है। धीरे-धीरे जब खड़ी बोली ने व्यापक रूप धारण कर लिया और पारस्परिक विचार विनिमय के लिये ही नहीं पठन-पाठन में भी खड़ी बोली का साम्राज्य स्थापित हो गया तो व्रज भाषा की कविता वर्तमान का विषय न रहकर पूर्वजों की संचित निधि बनकर रह गई। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि व्रज भाषा में आधुनिक काल में उच्च कोटि की रचनाएं नहीं हुईं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण, कविरत्न जगन्नाथदास रत्नाकर वियोगी हरि और श्री रामेश्वर करुण आदि ने व्रज भाषा में उच्च कोटि के साहित्य का सृजन किया है। व्रज भाषा की धारा भले ही क्षीण हो गई हो पर अभी सूखी नहीं है।

हिंदी साहित्य के माध्यम के रूप में खड़ी बोली के स्वीकृत हो जाने के बाद वस्तुतः व्रज और अवधि के लिये भविष्य में महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान् कवियों का फिर उत्पन्न होना कठिन है। परन्तु इन भाषाओं में इस प्रकार के उच्च कोटि के इन कवियों की रचनाओं का होना ही यह सिद्ध करता है कि हिन्दी भाषा चाहे जो रूप बदले, चाहे जो प्रादेशिक भाषा समस्त हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करे, इन प्रादेशिक भाषाओं का महत्व सदा बना रहेगा। व्रज, अवधि, राजस्थानी और पूर्वी सभी एक उसी व्यापक हिंदी भाषा के अविच्छेद्य और अविभाज्य अंग हैं।

कवितानिकुंज में हिंदी के प्रारम्भिक युग से लेकर उत्तर मध्यकाल तक के प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह किया गया है। यह पुस्तक जहाँ हिंदी काव्य साहित्य के क्रमिक विकास और व्यापक स्वरूप का दिग्दर्शन कराती है वहीं यह हिंदी के प्रतिनिधि कवियों की काव्य-प्रतिभा और उनके उच्च कोटि के साहित्य से हमें परिचित कराती है।

स्वाधीन भारत में हिंदी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वह समय दूर नहीं है जब संसार के विभिन्न देशों के लोग हिंदी को संसार की एक समृद्धतम भाषा मानकर उसका अध्ययन करेंगे और हिन्दी के प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य के अमूल्य भंडार को देखकर यह कहेंगे कि हिन्दी साहित्य का वह युग, जब वह एक पराधीन देश की भाषा थी, साहित्यिक दृष्टि से किसी भी देश के साहित्य की तुलना में पीछे नहीं है। उसके कबीर और तुलसी, उसके सूर और मीरा हिंदी की ही नहीं, भारत की ही नहीं, विश्व भर की विभूति हैं।

कवि-परिचय

१. चन्दबरदाई

चन्दबरदाई हिन्दी के सर्वप्रथम उल्लेखनीय ग्रंथ पृथ्वीराज रासो के रचयिता हैं। वे अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, मित्र और सामन्त थे। उनका जन्म लाहौर में हुआ था। कहा जाता है कि चन्द और महाराज पृथ्वीराज एक ही दिन पैदा हुए थे और उन्होंने अपनी इह लीला एक ही दिन संवरण की थी।

पृथ्वीराज रासो ढाई हजार पृष्ठों का बृहद् ग्रंथ है जिसमें ६९ समय या अध्याय हैं। इसमें प्राचीन काल में प्रयुक्त सभी छन्दों का व्यवहार हुआ है। किन्तु रासो की प्रामाणिकता पर संदेह है और विद्वानों में इस पर बड़ा मतभेद है। संवत् की गलती, भाषा की व्यवस्था और असंभव घटनाओं की बहुलता ये ऐसी बातें हैं जिनके कारण इस ग्रंथ का प्रामाणिक मानना कठिन है।

२. अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का समय संवत् १३४० के लगभग माना जाता है। ये हिन्दी, संस्कृत और फारसी के विद्वान थे। इनका स्वभाव बहुत विनोदी और मिलनसार था। इनकी रचनाओं में इनका यह गुण स्पष्ट झलकता है। इनकी पहेलियां और मुकरियां प्रसिद्ध हैं। इन्होंने कुछ गीत और दोहे भी लिखे हैं। इनकी रचना में खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों के उदाहरण मिलते हैं।

३. विद्यापति

विद्यापति अपने सरस पदों के लिये विख्यात हैं। अपनी सरल रचनाओं में तत्कालीन मैथिली का व्यवहार किया है। बंगाली साहित्य में भी विद्यापति को बंगला भाषा का कवि माना जाता है।

विद्यापति के पद अधिकतर शृंगार के हैं जिनमें नायक और नायिका राधा कृष्ण हैं। इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं की स्तुतियों के रूप में भी इनकी रचना मिलती है।

भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से विद्यापति की रचना अत्यन्त सरल और मधुर है।

४. कबीरदास

महात्मा कबीरदास की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई मत हैं। इनका जन्म काल जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार विक्रम संवत् १४५६ माना जाता है। कहते हैं कि इनका जन्म किसी विधवा ब्राह्मणी के पेट से हुआ था और नीरू नामक जुलाहे ने इन्हें पाला था। ये अपने को रामानन्द जी का शिष्य मानते थे। कुछ लोगों का कहना है कि इन्होंने शेखतकी से भी दीक्षा ली थी।

कबीर एक भक्त थे, इन्होंने निर्गुण ब्रह्म को अपनी उपासना और प्रेम का विषय बनाया और योग को साधन के रूप में स्वीकार किया। इन्होंने अहिंसा को महत्व दिया और इसके लिये हिन्दू और मुसलमान दोनों की ही कड़ी आलोचना की है। धर्म के नाम पर ऊँच-नीच का भेद करने वालों को भी इन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई है। ये अन्धविश्वास के बड़े विरोधी थे

और इसके विरुद्ध प्रचार करने में इन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। इनका जीवन अत्यन्त सदाचारपूर्ण था और अपने सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करते थे।

कबीर की वाणी बीजक के नाम से प्रसिद्ध है और यह तीन भागों में विभक्त है—रमैनी, शब्द और साखी। रमैनी और शब्द गाने के पद हैं और साखी दोहों में है। कबीर की कविता में राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली आदि के पद बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं परन्तु उनके पदों में व्रजभाषा और पूर्वी हिन्दी को ही स्थान मिला है।

कबीर की कविता में अत्यन्त सरलता, सचाई और सादगी है। अपने उत्कट सत्य, प्रेम के कारण कभी-कभी ये कठोर आलोचक के रूप में भी उपस्थित होते हैं परन्तु फिर भी इनकी सरलता सर्वत्र व्याप्त है। कबीर एक बड़े कवि ही नहीं थे ये एक बड़े भक्त और समाज-सुधारक भी थे।

५. रैदास

रैदास या रविदास जाति के चमार थे। इनकी गिनती रामानन्द जी के प्रसिद्ध भक्तों में होती है। कबीर के समान ही ये काशी के रहने वाले थे और भक्तों में इनका बड़ा आदर था। इनकी भक्ति भी निर्गुण की ओर झुकी हुई थी। इनका प्रभाव पश्चिमी संयुक्त प्रांत में अधिक है। गुरु ग्रंथ साहब में इनके बहुत से पद मिलते हैं।

कबीरदास के समान ही ये भी स्वावलम्बन में विश्वास करते थे। जिस प्रकार कबीरदास जी कपड़ा बुनकर जीविका

चलाते थे वैसे ही ये भी जूते बनाकर अपना निर्वाह करते थे। भक्ति और सरलता की ये मूर्ति थे। कबीर की भांति इन्होंने भी १२० वर्ष की आयु में संसार-त्याग किया था। आज भी गुजरात, बिहार आदि प्रान्तों में लाखों व्यक्ति अपने को भक्त रैदास का अनुयायी मानकर अपने को धन्य मानते हैं।

६. गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म सं० १५२६ कार्तिकी पूर्णिमा को लाहौर जिले के तलवण्डी ग्राम में हुआ था। ये बचपन से ही प्रभु-भक्ति की ओर आकर्षित हो गये थे। इन्होंने निर्गुण उपासना का प्रचार किया। और आगे चलकर सिख सम्प्रदाय के आदि गुरु हुए। इनके भक्तिभाव से पूर्ण भजन व्रजभाषा में हैं पर उनमें खड़ी बोली और पंजाबी की भी पुट है। इनकी कविता सीधी-सादी भाषा में है और उसके भाव अत्यन्त सरल हैं। अपनी कविता में प्रभु की महिमा बहुत विस्तार से गाई है। इन्होंने ईश्वर के व्यापक और विराट् स्वरूप का अनुभव किया था और उसी की भक्ति का प्रचार किया।

इन्होंने देश-विदेश की दूर-दूर तक यात्रा की थी।

७. दादू

दादूदयाल का जन्म संवत् १६०१ में अहमदाबाद गुजरात में हुआ था। उन्होंने अपने मत का प्रचार राजपूताने में किया और संवत् १६६० में जयपुर के पास ही इनका देहान्त हुआ।

दादू की बानी दोहे और पदों में है। इनकी भाषा पश्चिमी

हिन्दी है जिसमें राजस्थानी का मेल है। गुजराती, पंजाबी और राजस्थानो में भी इनके पद मिलते हैं।

इनकी रचना में प्रेम की व्यंजना अधिक है और खण्डन-मण्डन में इनकी रुचि नहीं दिखाई देती। सिद्धान्त की दृष्टि से दादू और कबीर के मत में कोई अन्तर नहीं है।

८. मलूकदास

मलूकदास का जन्म, संवत् १६३१ में कड़ा जिला इलाहाबाद में हुआ था। संत के रूप में इनकी बहुत प्रसिद्धि हुई थी। जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में इनकी गद्दियां स्थापित हुई थीं। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—रत्नखान और ज्ञानबोध। हिन्दू-मुसलमान दोनों को ये समान रूप से उपदेश देते थे। इनकी रचना में काव्योचित प्रतिभा दिखाई देती है।

इन्होंने अपनी रचना में जहां-तहां खड़ी बोली का प्रयोग किया है। प्रेम, वैराग्य आदि पर इनके पद बहुत मनोहर हैं। संवत् १७३९ में १०८ वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ।

९. मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी फकीर थे और शेख मुहीउद्दीन के शिष्य। इनके जन्म-काल के सम्बन्ध में ठीक निश्चय नहीं हो सका है पर इतना तो निश्चित ही है कि ये शेरशाह के समय में थे। जायस में रहने के कारण ये जायसी कहलाए।

जायसी अपने समय के माने हुए फकीर थे। अमेठीराज

घराने में इनका बहुत मान था। इनके जीवन-काल में ही इनकी रचना बहुत लोकप्रिय हो गई थी।

इन्होंने पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम ये तीन पुस्तकें लिखीं जिनमें पद्मावत सबसे प्रसिद्ध है। पद्मावत प्रेम गाथा परम्परा का सबसे उत्तम ग्रन्थ है। इसकी नायिका रानी पद्मावती और नायक राजा रतनसेन हैं। दोनों ही चरित ऐतिहासिक हैं परन्तु जायसी ने अपनी कल्पना को खूब उड़ान भरने दिया है और इस प्रकार यह ग्रन्थ बहुत सरस हो गया है। अखरावट में वर्णमाला के एक-एक वर्ण को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी चौपाइयां कही गई हैं। आखिरी कलाम में कयामत का वर्णन है।

१०. गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में रामभक्ति का उज्ज्वल प्रकाश फैलाने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को ही है। गोस्वामी जी जैसे उच्च कोटि के सन्त थे वैसे ही उच्च कोटि के प्रतिभा-सम्पन्न कवि। यह उनकी प्रतिभा का चमत्कार ही है जो अपने समय की सभी प्रचलित पद्धतियों में इन्होंने अपनी रचना की और आज इनकी रचना हिन्दी साहित्य की सबसे अधिक मूल्यवान् सम्पत्ति बनी हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्मकाल के सम्बन्ध में मतभेद है। परन्तु गृयर्सन के अनुसार यह संवत् १५८९ है जो ठीक जान पड़ता है। इनके दीक्षा गुरु बाबा नरहरिदास और कविता गुरु शेष सनातन जी थे। परन्तु जैसा कि कहा जाता है इनको विरक्त

बनाने वाली स्वयं इनकी स्त्री थी । विरक्त होकर गोस्वामी जी तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े और अन्त में अयोध्या आकर संवत् १६३१ में रामचरितमानस लिखना आरम्भ किया। इसका कुछ अंश काशी में भी पूरा किया गया। रामायण समाप्त करके गोस्वामी जी काशी में ही रहने लगे।

तुलसीदास जी का व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था और दोनों भाषाओं में इन्होंने उच्च कोटि की रचनाएं की हैं। हिन्दी की सभी प्रचलित शैलियों में वीर-गाथा काल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीत पद्धति, गंग आदि की कवित्त, सवैया पद्धति, कबीर की दोहा पद्धति और प्रेममार्गी कवियों की दोहा-चौपाई पद्धति सबमें इनकी रचनायें मिलती हैं।

कविता के वर्ण्य विषय की दृष्टि से देखा जाय तो इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत है । वास्तव में ये जनता के प्रतिनिधि कवि हैं । मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों के सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है और समाज के सामने एक निश्चित और स्पष्ट आदर्श रखने का प्रयत्न किया है। तुलसीदास जी की काव्य-प्रतिभा का प्रमाण रामचरितमानस में एकत्र ही मिल जाता है । यह ग्रन्थ सभी काव्योचित गुणों से सम्पन्न है । शृंगार के वर्णन में इन्होंने मर्यादा का बड़ी कड़ाई से पालन किया है। ये कवि ही नहीं महान उपदेशक भी थे।

गोस्वामीजी के बारह ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली और विनयपत्रिका बड़े ग्रन्थ हैं। तथा रामलला नहछू, पार्वती-

मंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपनी और कृष्ण-गीतावली छोटे।

हिन्दी साहित्य को अपनी गौरवमयी रचना से गौरवान्वित करके संवत् १६८० में गोस्वामी जी ने काशी में गंगा और असी संगम पर अपना शरीर परित्याग किया।

११. हृदयराम

ये पंजाब के रहने वाले थे। इन्होंने संवत् १६८० में संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर हिन्दी में हनुमन्नाटक लिखा। इसमें सवैयों और कवित्तों में बड़े अच्छे संवाद हैं। इस ग्रन्थ की कविता बड़ी ही सरल, सरस और परिमार्जित है। इस प्रकार के नाटक ग्रंथ उस समय में कई लिखे गये जिन में हृदय-राम का हनुमन्नाटक सबसे ऊँची श्रेणी का है।

१२. सूरदास

सूरदास जी के प्रारंभिक जीवन के सम्बन्ध में विशेष बातें लोगों को मालूम नहीं हैं। परन्तु यह निश्चय है कि वल्लभाचार्य जी उनके पद सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन करने का भार सौंपा। तब से वे बराबर गोवर्द्धन पर्वत पर मन्दिर की सेवा में रहे। सूरदास जी का जन्म काल संवत् १५४० के लगभग माना जा सकता है।

वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी ने आठ कृष्ण-भक्त कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की स्थापना की थी, उनमें सूरदास जी भी एक थे।

कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को लेकर बहुत अच्छी और बहुत अधिक रचना की है। वास्तव में जयदेव और विद्यापति के मार्ग का ही बाद के कृष्णभक्ति कवियों ने अनुसरण किया है। सूरदासजी ने भी उसी पद्धति को अपनाया है किन्तु उनकी कविता में जो तन्मयता पाई जाती है वह अन्यत्र मिलना कठिन है। शृंगार और वात्सल्य में हिन्दी का कोई दूसरा कवि इनसे आगे नहीं जा सका। श्रीकृष्ण की बाललीला का ऐसा सजीव और सुन्दर वर्णन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। शृंगार में विशेषकर विरहदशा के वर्णन में सूरदासजी को अपूर्व सफलता मिली है। नये-नये प्रसंग ढूंढ निकालने की तो सूरदास जी में अद्भुत क्षमता थी। बाल्य-जीवन और किशोरावस्था के सीमित क्षेत्र में इन्होंने नये-नये ऐसे प्रसंग ढूंढ निकाले हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। सूरसागर में भ्रमर-गीत सब से उत्कृष्ट भाग है। उद्धव और गोपियों का ऐसा संवाद साहित्य के लिये गौरव की चीज है।

१३. नन्ददास

ये भी अष्टछाप के कवियों में से हैं किन्तु इनका कविताकाल सूरदासजी के बाद तक का माना जा सकता है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं जैसे रासपंचाध्यायी, रुक्मणी मंगल, भागवत दशम स्कंध, रूपमंजरी, भ्रमर-गीत आदि इनकी सरस पद रचना के कारण ही यह कहावत प्रसिद्ध हो गई है "और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया।"

१४. मीराबाई

मीराबाई मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री थीं और इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराजजी से हुआ था। इनका जन्म संवत् १५६३ में हुआ था। आरम्भ से ही ये कृष्ण-भक्ति में मग्न रहती थीं और ज्यों-ज्यों इनकी अवस्था बढ़ी इनका कृष्ण प्रेम भी बढ़ता गया। इनकी भक्ति से इनके घर के लोग रुष्ट रहते थे। इसमें उन्हें अपने कुल की मर्यादा की हानि दिखाई देती थी।

मीरा की उपासना माधुर्य भाव की थी। वे कृष्ण को ही अपना पति मानती थीं। देश के संत-समाज में मीरा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इनकी कविता की भाषा व्रज है। पर कहीं-कहीं राजस्थानी भी मिली हुई है। इनके पदों में अपूर्व तल्लीनता दिखाई देती है। इनके बनाये ग्रन्थ नरसीजी का मायरा, गीत गोविन्द टीका, राग गोविन्द और राग सोरठा के पद हैं।

१५. रसखान

रसखान दिल्ली के एक पठान सरदार थे। किन्तु आगे चलकर विरक्त हो गये। ये माने हुए कृष्णभक्त थे। इन पर गोसाईं विट्ठलनाथजी की बड़ी कृपा थी।

इनकी कविता में गंभीर प्रेम और आत्मसमर्पण के भाव पाये जाते हैं। इनकी टक्कर के दूसरे कवि घनानन्द ही हैं जिनका प्रेमोद्गार इतना सफल हुआ है। इनकी रचनाएं बहुत नहीं हैं। वे बहुत ही जोरदार हैं। इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

प्रेम वाटिका दोहों में है और सुजान रसखान कवित्त और सवैयों में। अन्य कृष्णभक्त कवियों के समान गीतों के स्थान पर इन्होंने कवित्त और सवैयों को ही अपनाया है। इनकी भाषा बहुत गठी हुई है और इनकी रचना में तन्मय करने की अपूर्व शक्ति है।

१६. नरोत्तमदास

ये सीतापुर जिले के वाड़ी नामक कसबे के रहने वाले थे। इनका ग्रन्थ सुदामा चरित्र बहुत प्रसिद्ध है। घर की दरिद्रता का चित्रण इस ग्रन्थ में बहुत सफल हुआ है। छोटा होते हुए भी यह ग्रन्थ बहुत ही सरस एवं हृदयस्पर्शी हुआ है। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अनूठा है।

१७. गंग

गंग अकबर के दरबारी कवि थे और रहीम इनका बड़ा आदर करते थे। इनके जन्म, कुल आदि के सम्बन्ध में बहुत कम बातें मालूम हैं। कोई इन्हें ब्राह्मण कहता है और कोई ब्रह्मभट्ट।

इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है परन्तु फुटकर रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये अपने समय के उत्कृष्ट कवि थे। सरसता और वाग्विदग्धता इनकी कविता के विशेष गुण हैं। हास्य रस की कविता रचने में भी ये कुशल थे। कहा जाता है कि इनकी एक मजाक की कविता से रुष्ट होकर किसी नवाब ने इन्हें हाथी से कुचलवाकर मरवा डाला था।

१८. केशव

यह सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म, संवत १६१२ में हुआ

था। ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा में ये रहते थे। इनका घराना पंडितों का था और राजकुल में इनका बड़ा सम्मान था। ये स्वयं भी अच्छे पंडित थे। हिन्दी में तो ये साहित्य शास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

केशव के रचे सात ग्रन्थ मिलते हैं—कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेव चरित, विज्ञान गीता, रतन बावनी और जहांगीर जस चन्द्रिका। इनकी रचनाओं पर संस्कृत का बहुत प्रभाव है। भाव और शब्दावली दोनों ही दृष्टियों से यह बात लागू होती है। प्रवन्ध-काव्य की दृष्टि से इमका स्थान बहुत ऊंचा नहीं है परन्तु उनके द्वारा काव्य के अंगों का अच्छा परिचय मिलता है।

१६. रहीम

यह अकबर बादशाह के अभिभावक बैरमखाँ के पुत्र थे। इनका जन्म, संवत् १६१० में हुआ था। ये संस्कृत, अरबी और फारसी के विद्वान और हिन्दी के उच्चकोटि के कवि थे। ये बड़े उदार, नम्र और दानी थे।

ये अनुभवी और भावुक व्यक्ति थे इसी कारण इनकी कविता बहुत लोकप्रिय हुई है। इनका भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार था। इनके दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं पर ये वरवे, कवित्त, सवैया, सोरठा और पद सभी लिखते थे। इनका देहान्त संवत् १६८३ में हुआ। इनके बनाये हुए कई ग्रंथ हैं। जिनमें रहीम दोहावली, वरवै नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, नगरशोभा। फुटकल वरवै और फुटकल कवित्त सवैये का पता लग चुका है।

२०. बिहारी

महाकवि बिहारीलाल का जन्म, संवत् १६६० में ग्वालियर के पास वसुआगोविन्दपुर गांव में हुआ था। ये जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनके दोहों का संग्रह बिहारी सतसई हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में से है। इसमें प्रधानता शृंगार की है। नीति के भी कुछ दोहे हैं। थोड़े शब्दों में अधिक भाव भरने की अद्भुत शक्ति बिहारी में थी। सतसई की पचासों टीकाएं लिखी गई हैं और संस्कृत उर्दू में भी इसका अनुवाद हो चुका है। शृंगार रस के ग्रन्थों में बिहारी सतसई का सबसे अधिक सम्मान हुआ है।

२१. मतिराम

ये रीति काल के प्रधान कवियों में हैं। कहा जाता है चिन्तामणि तथा भूषण इनके भाई थे। इनका जन्म, संवत् १७७४ में तिकवांपुर जिला कानपुर में हुआ था। इनके आश्रयदाता बूंदी के महाराज भावसिंह थे। ललितललाम, छंदसार, रसराज साहित्यसार-शृंगार और मतिराम-सतसई इनके बनाये हुए ग्रंथ हैं। भाषा और भाव दोनों के विचार से इनकी रचना सरल है।

२२. भूषण

वीररस के प्रसिद्ध कवि भूषण का जन्म-काल संवत् १६७० है। इनके दो भाई चिन्तामणि और मतिराम भी अच्छे कवि थे। कई राजाओं ने इन्हें आश्रय दिया पर अन्त में ये महाराज शिवाजी के पास चले गये। पन्ना के महाराज छत्रसाल ने भी इनका बहुत सम्मान किया था।

२३. देव

ये इटावा के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १७३० है। ये १६ वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगे थे। ये आश्रयदाता की खोज में बहुत घूमे पर अच्छा आश्रयदाता इन्हें कोई नहीं मिला। कहते हैं इन्होंने ३२ पुस्तकें लिखीं जिनमें २५ के लगभग उपलब्ध हैं। ये आचार्य और कवि दोनों ही थे। इनकी रचना में कवित्व और मौलिकता दोनों ही गुण हैं और भाषा में प्रवाह भी खूब है।

२४. भिखारीदास

ये प्रतापगढ़ के पास ट्योंगा गांव के रहने वाले थे। इनका कविताकाल संवत् १७८७ से संवत् १८०७ तक माना जा सकता है। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे जिनमें प्रधानता रीति ग्रन्थों की है। काव्य के अंगों के निरूपण में हिन्दी के कवियों में इनका स्थान सबसे ऊँचा है।

इनकी भाषा परिमार्जित है। शब्दाडम्बर से रहित है। ये ऊँचे दर्जे के कवि थे। शृंगार के वर्णन में भी इन्होंने बहुत संयम से काम लिया है।

२५. वेनी बंदीजन

ये वैंती जिला रायबरेली के रहने वाले थे। इनके आश्रयदाता अवध के प्रसिद्ध वजीर महाराज टिकैतराय थे। इनके लिए दो ग्रन्थ टिकैतराय प्रकाश और रसविशाल हैं पर ये अपने भड़ौवों के लिये प्रसिद्ध हैं। इनका कविताकाल १८४९ से १८८० तक माना जा सकता है।

२६. पद्माकर

रीतिकालीन कवियों में बिहारी के बाद पद्माकर ही सबसे अधिक लोकप्रिय कहे जा सकते हैं। अपनी सुन्दर रचनाओं के लिये ये विख्यात थे। इनका जन्म, संवत् १८१० में बांदे में हुआ था।

ये अनेक स्थानों में घूमते रहे और सितारा, जयपुर, ग्वालियर और बूँदी आदि के महाराजाओं ने इनका बहुत सम्मान किया। हिम्मत बहादुर विरुदावली, जगद्विनोद, पद्माभरण, प्रबोध-पचासा, रामरसायन आदि इनके रचे हुए ग्रन्थ हैं। इनकी रचनायें बहुत भावपूर्ण और सरस हैं।

२७. गुरु गोविन्दसिंह

ये सिखों के अन्तिम गुरु थे। इनका जन्म, संवत् १७२३ में हुआ था। ये काव्य के अच्छे ज्ञाता थे और सिखों में विद्याप्रचार के विचार से इन्होंने बहुत-से लोगों को विद्याध्ययन के लिए काशी भेजा था। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के उपासक थे। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं जैसे सुनीतिप्रकाश, सर्व लोह-प्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागर और चंडी-चरित्र। अपनी रच-नाओं में इन्होंने प्रौढ़ व्रजभाषा का प्रयोग किया है।

२८. घन आनन्द

ये व्रजभाषा के प्रधान कवियों में हैं। इनका जन्म, संवत् १७४५ में हुआ था और सम्वत् १७९६ में ये नादिरशाही में मारे गये। इनके रचे ग्रन्थों में सुजान-सागर, विरह-लीला, कोक-सार, रस-केलिवल्ली और कृपाकांड मिलते हैं। इनकी भाषा प्रौढ़

और मधुर है। प्रेम विशेषकर विरह के वर्णन में ये अद्वितीय हैं। हृदय के कोमल भावों के वर्णन में तो मानो भाषा इनकी दासी होकर चलती है।

२६. दीनदयाल गिरि

ये गोसाईं थे। इनका जन्म १८५६ में काशी में हुआ था। ये हिन्दी और संस्कृत दोनों के पण्डित थे। अन्योक्ति लिखने में इन्हें बहुत सफलता मिली है। इनकी भाषा बहुत परिष्कृत और सुव्यवस्थित है। अन्योक्ति कल्पद्रुम, अनुरागबाग, वैराग्यदिनेश, विश्वनाथ नवरत्न और दृष्टांत तरंगिणी इनके रचे ग्रंथ हैं। संवत् १६१५ में इनका परलोकवास हुआ।

चन्दबरदाई

(पद्मावती विवाह से)

दूहा

पूरब ढ़िस गढ़ गढ़न पति, समुद्र सिषर अति दुग्ग ।
तहँ सुविजय सुर राज पति, जादू कुलह अभग्ग ॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर भ्रज्जाद ।
पवल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसाँन बहु साद ॥

कवित्त

धुनि निसाँन बहु साद, नाद सुर पंच बजत दिन ।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह ।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रक्खह ॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उम्मर डमर ।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदमसेन कूँवर सुघर ॥

दूहा

पदम सेन कूँवर सुघर, ता घर नारि सुजान ।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससि भान ॥

कवित्त

मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय ।
बाल बेस ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय ॥
विगसि कमल मृग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहि घुट्टिय ॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय ॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास ।
पसु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान ।
जानि चतुर दस अंगषट, रति बसंत परमान ॥
सखियन सँग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास ।
कीर इक्क दिष्षय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥

कवित्त

मन अति भयौ हुलास, विगसि जनु कोक किरन रवि ।
अरुन अधर तिय सधर, बिम्ब फल जानि कीर छवि ॥
यह चाहत चख चकित, उह जुतक्किय झरप्पि झर ।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर ॥
हरषत अनन्द मन महि हुलस, लैजु महल भीतर गई ।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्षत भई ॥

दूहा

तिही महल रष्षत भइय, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहूँट्टयो कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ल॥
कीर कुँवरि तन निरखि, दिखि नखसिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पदमिनि सरूप॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेस, पौहप रचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संघ, हंस गति चलत मँद मद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुंद जस।
भमर भँवहि भुल्लहि सुभाव मकरन्द वास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय॥

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यौ बचन के हेत।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत॥

गाथा

पुच्छत वयन सुबाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुम देस, कवन यंद करै परवेस॥
उच्चरिय कीर सुन बयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुँवानं, तहँ प्रथिराजह सूर सुभारं॥

पद्धरी

पदमावतीरि कुँवरी सँधत्त, दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त।
हिन्दवांन थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस॥

संभरि नरेस चहुवाँन थाँन, प्रथिराज तहाँ राजंत भांन।
बैंसह वरीस षोड़स नरिंद, आजान बाहु भुअ लोक यंद॥
संभरि नरेस सोमेस पूत, देवंत रूप अवतार धूत।
सामंत सूर सवै अपार, भूजाँन भीम जिम सार भार॥
जिहि पकरिसाह साहाव लीन, तिहुं बेर करिय पानीप हीन।
सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जंजीर, चुक्कै नसबद बेधंत तीर॥
बल बैंन करन जिमि दाँन मान, सतसहस सील हरिचँद समान।
साहस सुक्रंम विक्रम जुवीर, दाँनव सुमत्त अवतार धीर॥
दिस च्यार जाँनि सब कला भूप, कंद्रप्प जानि अवतार रूप।

दूहा

कामदेव अवतार हुआ, सुअ सोमेसर नंद।
सहस किरन झलहल कमल, रिति समीप बर विंद॥
सुनत श्रवण प्रथिराज जस, उमंग बाल बिधि अंग।
तन मन चित चहुँवान पर, बस्यो सुरत्तर रंग॥
वेस बिती ससिता सकल, आगम कियौ बसंत।
मात पिता चिन्ता भई, सोधि जुगति कौ कंत॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत, कियौ तव चित्त चहौं दिस।
लग्यौ विप्र गुरु बोल, कही समझाय बात तस॥
नर नरिंद नर पति, बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह।
सीसवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सुनरेसह॥
तब चलन देहु दुज्जह लगन, सगुन बंद दिय अप्प तन।
आनँद उछाह समुदह सिपर, वजत नद्दनीसाँन धन॥

दूहा

सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊँ गढ़ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिव्व अभंग॥
नार केलि फल परठि दुज, चौक पुरि मनि मुत्ति।
दई जु कन्या वचन वर, अति अनन्द करि जुत्ति॥

भुजंग प्रयात

पदमावती विलखि वर वाल वेली, कही कीरसों वात तवहो अकेली।
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं, वरं चहुवाँन जु आनौ नरेसं।

दूहा

आनो तुम्ह चहुँवान वर, अरु कहि इहै संदेस।
साँस सरीरहि जो रहै प्रिय प्रथिराज नरेस॥

× × × ×

लै पत्री सुक लै चल्यौ, उड्यो गगनि गहि वाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ट जाँम में जाव॥
दिय कग्गर नृप राज कर, पुलि बंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन को साज॥

दूहा

जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पति साह कौं भइ गज्जनै आवाज॥

पद्धरी

दिष्पं पंथ दिल्ली दिसाँन, सुख भयो सुक जव मिल्यो आन।
संदेस सुनत आनन्द नैन, उमगीय वाल मनमथ्थ सैन।

तन चिकट चोर डार्यों उतारि मज्जन मयंक नव सत सिंगार।
भूषन मँगाय नख शिख अनूप, सजिसेन मनो मनमथ्थ भूप।
सोवन्न थार मोतिन भराय झलहल करंत दीपक जराय।
संगह सखिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय जेम लज्जत मराल।
पूजिय गवरि संकर मनाय, दच्छिनै अंग करि लगिय पांय।
फिर देखि देखि प्रथिराज राज हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज।
कर पकरि पीठ हय पर चढ़ायौ, लै चल्ल नृपति दिल्ली सुराय।
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय, पदमावतीय हरि लीय जाय।
बाजी सुवंब हय गय पलान दौरे, सुसज्जि दिस्सह दिसान।
तुम लेहु लेहु मुख जंपि जोध, हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध।
अग्गें जु राज प्रथिराज भूप पच्छै सुभयो सब सेन रूप।
पहुँचे सुजाय तत्ते तुरङ्ग भुत्र घिरन भूप जुरि जोध जंग।
उलटी जु राज प्रथिराज वाग, थकि सूर गगन धर धसत नाग।
सामंत सूर सब काल रूप गहि लोह छोह वाहै सुभूप।
कम्मान वान छुट्टहिं अपार, लागंत लोह इम सारी धार।
घमसान घान सब्ब वीर खेत घन श्रोन वहत अरु रुकत रेत।
मारे बरात के जोध जोह, परि रुंड मुंड अरि खेत सोह।

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि करि दिल्लिय मुख रुक्ख।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख॥
पदमावति इम लै चल्यो, हरखि राजप्रथिराज।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज॥

कवित्त

भई जु आनि अवाज, आय साहा बदीन सुर।
आज गहौं प्रथिराज, बोल बुल्लंत गजत धुर॥
क्रोध जोध जोधा अनंत, करिय पंती अनि गज्जिय।
बान नालि हथ नालि, तुपक तीरह सब सज्जिय॥
पर्वै पहार मनो सार के, भिरि भुजान गज ने सबल।
आये हंकारि हंकार करि, खुरासान सुलतान दल॥

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै संग।
दिल्ली दिसी मारग लगौ उतरि घाट गिर गंग॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुर ताँन।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथीराज चहुआँन॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न, सुभ धरी परिट्ठय।
हर बाँसह मंडप बनाय, करि भाँवरि गंठिय॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं, होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह, प्रथिराज राज नर॥
डंड्यौ साह साहाबदी, अट्ठ सहस हय वर सुबर।
दै दाँन माँन षट भेष को, चढ़े राज द्रुग्गा हुजर॥

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गाह नृपति, सुमत राज प्रथिराज।
अति अनन्द आनन्द सैं, हिन्दवान सिर ताज॥

———

अमीर खुसरो

खालिक बारी

खालिकबारी सिरजन हार। वाहिद एक बिदा करतार ॥
रसूल पैगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोलै जो ईठ ॥
बया बिरादर आवरे भाई। बन शान मादर बैठरी माई ॥
मुश्क काफूर अस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवी आनंद शादाऔरसरूर ॥
मूश चूहा गुर्बः बिल्ली मार नाग। सोजनो रिश्त:ब हिन्दी सुईताग ॥

पहेलियाँ

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने खूब रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मेरी।
"अमीर खुसरो" यों कहे बूझ पहेली मेरी।

निंबोरी।

आदि कटे ते सबको पारै। मध्य कटे ते सबको मारै।
अन्त कटे ते सब को मीठा। सो खुसरो मैं आँखों दीठा।

काजल।

बाला था जब सब को भाया। बढ़ा हुआ कछु काम न आया।
खुसरो कह दिया इसका नांव। अर्थ करो या छोड़ो गाँव।

दिया।

सावन भादों बहुत चलत है, माघ पूस में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी।

मोरी।

आवे तो अंधेरी लावे। जावे तो सब सुख ले जावे।
क्या जानूं वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है।

आँख।

नारी ते तू नर भई, औ श्याम वरन भइ सोय।
गली गली कूकत फिरे, कोइलो कोइलो लोय।

कोयला।

झिल मिल का कुआँ, रतन की क्यारी।
बताओ बताओ, नहीं दूंगी गारी।

दर्पण।

एक नार तरवर से उतरी, वाके सर पर पाँव।
ऐसी नार कुनार को, मैंना देखन जाव।

मैना।

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार।
सोने का सा रङ्ग है, कोई चतुरा करे विचार।

चना।

श्याम वरन पीताम्बर कांधे, मुरली धर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझे कोय।

भौंरा।

एक नार कूएं में रहे। वाका नीर खेत में बहे।
जो कोई वाके नीर को चाखे। फिर जीवन की आस न राखे।

तलवार।

मुकरियां

वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल। ऐ सखि, साजन? ना सखी;
ढोल।

जब मेरे मन्दिर में आवे। सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर। ऐ सखि, साजन? ना
सखि, मच्छर।

बेर बेर सोवतहिं जगावे। ना जागूं तो काटे खावे।
व्याकुल हुई मैं हक्की बक्की। ऐ सखि, साजन? ना सखि,
मक्खी।

———

विद्यापति

शक्ति स्तुति

१

कनक भूधर शिखर वासिनि, चन्द्रिका चय चारु हासिनि,
दसन कोटि विकास, वङ्किम तुलित चन्द्र कले,
क्रुद्ध सुर रिपु वल निपातिनि, महिष शुम्भ निशुम्भ घातिनि,
भीत भक्त भयापनोदन, पाटल प्रवले ।
जय देवि दुर्गे दुरित हारिणि, दुर्गमारि विमर्दकारिणि,
भक्तिनम्र सुरासुराधिप, मङ्गलायत रे,
गगन मण्डल गर्भ गाहिनि, समरभूमि सुसिंह वाहिनि,
परसुपास कृपाण सायक शङ्ख चक्र धरे ।
अष्ट भैरवि सङ्ग शालिनि, सुकर कृत्त कपाल मालिनि,
दनुज शोणित पिशित वर्द्धित पारणा रभसे ।
जगत बन्धु निदान मोचिनि, चन्द्रभानु कृशानु लोचनि,
जोगिनी गण गीत शोभित नृत्य भूमिरसे ।
जगति पालन जनन मारण, रूप कार्य सहस्र कारण,
हरि विरञ्चि महेश शेखर, चुम्ब्य मान पदे ।
सकल पाप कला परिच्युति, सुकवि विद्यापति कृतस्तुति,
तोषिते शिवसिंह भूपति, कामना फलदे ।

गङ्गा स्तुति

२

कत सुख सार पाओल तुअ तीरे।
छाड़इत निकट नयन बह नीरे।
कर जोड़ि विनमओं विमल तरंगे।
पुन दरसन हो पुनमति गंगे।
एक अपराध छेमब मोर जानी।
परसल माय पाऊ तुअ पानी।
कि करब जप तप जोग धेआने।
जनम कृतारथ एकहिं सनाने।
भनहिं विद्यापति समदओं तोहिं।
अनूकाल जनु विसरह मोहिं।

शिव स्तुति

३

कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ।
दुख ही जनम भेल दुखही गमाइब,
सुख सपनहुँ नहिं भेल हे भोलानाथ।
अच्छत चानन अउर गंगाजल,
बेलपात तोहि देब हे भोलानाथ।
यहि भवसागर थाह कतहुँ नहिं,
भैरव धरु कर आए हे भोलानाथ।
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति,
देहु अभय वर मोरा हे भोलानाथ।

कृष्ण स्तुति

४

तातल सैकत वारि बिन्दु सम सुतमित रमनी समाजे।
तोहि बिसरि मन ताति समर्पल अब मझु होव कोन काजे।
माधव हम परिणाम निराशा।
तुहुँ जगतारण दीन दयामय अतए तोहार बिसवासा।
आधे जनम हम नींदे गमाओल जराशिशु कत दिन गेला।
निधुवन रमनी रसरंग मातल तोहें भजब कोन बेला।
कत चतुरानन मरि मरि जाएत न तुअ आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुनि तोहे समाएत सागर लहरी समाना।
भनए विद्यापति सेस शमन भय तुअ बिनु गति नहिं आनूँ।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब तारन भार तोहारा।

वसन्त-वर्णन

फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर वन कोकिल पञ्चम गावे रे।
मलयानिल हिमशिखर सिधारल पिया निज देस न आवे रे।
चनन चान तन अधिक उतापए उपवन अलि उतरोंले रे।
समय वसन्त कन्त रहु दुर देस जानलनिधि प्रतिकूले रे।
अनमिख नयन नाह मुख निरखैत तिर पित नभे नयाने रे।
ईसुख समय सहए एत संकट अबला कठिन पराने रे।
दिन-दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनि न जानि कि जिबपरजंत रे।
विद्यापति कह धिक् धिक् जीवन माधव निकरुन कन्त रे।

वर्षा-वर्णन

सखि हे हमर दुखक नहिं ओर।

इ भर वादर माह भादव शून्य मन्दिर मोर।
झंपि घन गरजन्ति सन्तति भुवन भरि वर सन्तिया।
कन्त पाहुन, काम दारुन, सघन खर शर हन्तिया।
कुलिश कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया।
मन्त दादुर डाक डाहुक फाटि जायत छातिया।
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि अथिर बिजुरिक पांतिया।
विद्यापति कह कैसे गमा ओव हरि बिना दिन रातिया।

अन्य-पद

माधव कत तोर करव बड़ाइ।
उपमा तोहर हम ककरा कहव कहितहुँ अधिक लजाइ॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीश निशाकर तौ पुन इकहि पच्छ इंजोर॥
मनि समान अओरो नहिं दूसर तिन कहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित मैं रहु की कहु ठामहि ठामे॥
तोहर सरिस एतोह माधव मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने॥
सुनु रसिया।
आबन वजाउ विपिन वसिया॥
वार बार चरणारविन्द गहि सदा रहव वनि दसिया।
कि छलहुँ कि होएव सेके जानए वृथा होएत कुल हसिया॥
अनुभव ऐसन मदन भुजंगम हृदय हमर गेल डसिया।
नन्द नन्दन तुअ सरन न त्यागव वनु जनु अहाँ दुर जसिया॥
विद्यापति कह सुनु वनिता मनि तोरे मुख जीतल ससिया।
धन्य धन्य तोर भाग गोआलिनि हरि भजु हृदय हुलसिया॥

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
सेही परित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतुन होइ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
से हो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परसन गेल॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल॥
कत विदग्धजन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक॥

कबीरदास

दोहे

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिया बताय ॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तो भी सस्ता जान ॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ ।
पैंडा में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हा
सतगुर साँचा सूरमा, नखसिख मारा पूर ।
बाहर घाव न दीखई, भीतर चकनाचूर ॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दयाकरी मोहि आय ।
कोटि जनम का पथ था, पल में पहुँचा जाय ॥
कबीर हम जब गावते, तब जाना गुरु नाहिं ।
अबगुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥
सिख तो ऐसा चाहिये, गुरु को सह कछु देय ।
गुरु तो ऐसा चाहिए सिख से कछु नहिं लेय ॥
सिहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत ।
लालों की नहिं बेरियाँ, साधु न चले जमात ॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यों खाँडे की धार ।
डगमगाय तो गिरि परे, निःचल उतरै पार ॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी से नेह ।
कह कबीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥
कबीर संगत साधु की, हरै और की व्याधि ।
संगत बुरी असाधु की, आठों पहर उपाधि ॥
कबीर संगत साधु की, जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड भोजन मिले, साकट संग न जाय ॥
साधु ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार ।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदै आप ॥
साँचे स्राप न लागई, साँचे काल न खाय ।
साँचा को साँचा मिलै, साँचे माँहि समाय ॥
सुख के माथे सिलि परै, नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥
लेने को सतनाम है, देने को अनदान ।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुलतान ।
जाघट बिरहन संचरै, सो घट जान समान ॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक चहुँटै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥

जो जन बिरही नाम के, तिनकी गति है येह ।
देही से उद्यम करें, सुमिरन करें बिदेह ॥
कबिरा बैद बुलाइया, पकरि के देखी बांहि ।
बैद न वेदन जानई, करक करे जे मांहि ॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाँहि ।
साईं इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय ॥
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥
क्या मुख लै विनती करौं, लाज अवत है मोहिं ।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहि ॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीबनिवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥
लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल ।
दुर्बल को न सताइये, जाको मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास से, लोह भस्म हो जाय ॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदइ होय ।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥
आव गई आदर गया, नैनन गया सनेह ।
ये तीनों तबही गये, जब हिं कहा कछु देह ॥

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार॥
कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूंडो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंड़िये, जामें विषय विकार॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

× × × ×

पद

१

काया बौरी चलत प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हों नित उठि भक्ति मलि धोई।
सो तन छिया छार ह्वै जैहै नाम न लै है कोई॥
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर संग न होई।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा संग न लीना कोई॥
ऊसर खेत के कुसा मंगावै चांचर चँवर कै पानी।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी॥
सब सनकादिक आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई।
जो जो जन्म लियो वसुधा में थिर न रह्यो है कोई॥
पाप पुण्य है जन्म सँघाती, समुझि देखि नर लोई।
कहत कबीरा अन्तर की गति, जानत विरला कोई॥

२

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोई सूर नाहीं।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना, मंडा धमसान तहँ खेत वाही।।
शील औ सांच संतोष साही भये, नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहै कबीर कोई जूझि है सूरमा, कायरा भीड़ तहँ तुरत भाजै।।

३

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै मधुरी बानी।।
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी।।
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी।।

४

कैसे दिन कटि हैं, जतन बताये जइयो।।
एहि पार गंगा ओहि पार जमुना।
बिचवा भड़इया हमको छवाये जइयो।।
अंचरा फारिके कागद बनाइन
अपनी सुरति हियरे लिखाय जइयो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियां पकरि के रहिया बताये जइयो।।

५

करम गति टारे नाहिं टरी।

मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपत परी॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगौ रावन सुवरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरगिट जोनि परी॥
पांडव जिनके आप सारथी तिन पर विपत परी।
दुरजोधन का गरव छुटाओ जदुकुल नास करी॥
राहु केतु ओ भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही॥

६

सन्तो राह दोऊ हम दीठा।

हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा॥
हिन्दू वरत एकादसि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती।
अन को त्यागै मन नहिं हटकै, पारन करै सगोती॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल, बांग पुकारै।
उनकी भिस्त कहां से होइ है, सांझे मुरगी मारै॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनों घट सों त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारै, आगि दोनों घर लागी॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो राम न कहेउ खोदाई॥

७

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मन्दिर में वैठे, नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा।
कनवा फड़ास जोगी जटवा वढ़ौलै, दाढ़ी वढ़ाय जोगी होइ गैलैं वकरा।
जङ्गल जाय जोगी धुनियां रमौलैं, काम जराय जोगी वनि गैलैं हिजरा।
मछवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौलैं, गीता वांचिकै होइ गैलैं लवरा।
कहत कवीर सुनो भाई साधो, जमदरवजवां वांधत जैवे पकरा।

८

घूंघट का पट खोलरे तोहें जीव मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोवन का गरव न कीजे, झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्ना महल में दियरा वारिले, आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगुत सों रङ्ग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

६

तेरे दया धरम नहिं तन में, मुखड़ा क्या देखे दरपन में॥
घरबारी तो घर में राजी, फक्कड़ राजी वन में॥
ऐंठी धोती पाग लपेटी, तेल चुवत जुलफन में॥
गली गली की सखी रिझाई, दाग लगाया तन में॥
पाथर की एक नाव वनाई, उतरा चाहै छन में॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कायर चढ़ै न रन में॥

१०

मेरा तेरा मनुवां, कैसे एक हो रे।
मैं कहता हौं आखिन देखी, तू कहता कागद लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे॥
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंगी फिरै बिहंगी, सब धन डारा खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होइ रे॥

११

तोहिं मोही लगन लगाये रे फकिरवा।
सोवत ही मैं अपने मन्दिर में, सबद न मारि जगाये रे फकिरवा।
बूड़त ही भव के सागर में, बहियां पकरि समुझाये रे फकिरवा।
एकै वचन वचन नहिं दूजा, तुम मोसे बन्द छुड़ाये रे फकिरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम गुन गाये रे फकिरवा।

१२

अँधियरवा ठाढ़ि गोरी, का करतू।
जब लगि तेल दिया में बाती, एही अंजोरवा बिछाय घमतू।
मन का पलंग संतोप बिछौना, ज्ञान का तकिया लगाय रख तू।
जरि गया तेल बुझाइ गई बाती, सुरत में मुरत समाय रख तू।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जोतिया में जोतिया मिलाय रख तू।

१३

ज्ञान को गेंद कर सुरति का दंड कर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे बालके, आयजा भेख भगवंत पाहीं॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीति कै कंवलदल सोधिकै, ब्रह्म को वेधिकै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कबीर कोई संत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै॥

१४

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे की भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुख मन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कंवल दल चरखा डोलै, पांच तन्त्र गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

१५

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बून्द पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी, उलझपुलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ औ झांखर, आगि लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।

१६

आई गवनवां की सारी, उमरि अबहीं मोरी बारी॥ टेक॥
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी।

बम्हना बेदरदी अचिरा पकरि कै जोरत गंठिया हमारी॥
सखी सब गावन गारी॥
विधिगति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी।
रोम रोम आंखियां मोर पोंछत, घरवाँ से देत निकारी॥
भई सब कौ हम भारी॥
गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी।
छूटत गांव नगर से नाता, छूटै महल अटारी॥
करम गति टरै न टारी॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घूंघट पट टारी।
थरथराय तन कांपन लागे, काहू न देख हमारी॥
पिया लै आये गोहारी॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पदुलेहु विचारी।
अबके गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अंक बारी॥
एक बेर मिल ले प्यारी॥

———

रैदास

दोहा

हरि सा हीरा छांडि कैं, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास ॥१॥
रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद ॥२॥

पद

१

भगती ऐसी सुनहु रे भाई !
आइ भगती तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौ लौं तत्त्व न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूंड़ मुड़ायो, कथा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हे ॥
कह रैदास तेरी भगति दूर है, भाग बड़े सो पावे।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलिक ह्वै चुनि खावे ॥

२

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तैं जनम लिया संसार वे।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गंवार वे ॥
बालक बुद्धि न चेता तूँ भूला माया जाल वे।
कहा होय पीछे पछताये जल पहिले न बांधी पाल वे ॥

बीस बरस का भया अयाना थांभि न सका भार वे।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया संसार वे॥

३

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊं। फल अरु मूल अनूप न पाऊं॥
थनहर दूध जो बछरु जुठारी। पुहुप भंवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिर बेधियो भुअंगा। विष अमृत दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊं सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूं तेरी। कहै रैदास कवन गति मेरी॥

४

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति ते कोई पद नहिं पहुँचा राम भगति विशेष रे॥
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित्त दृढ़ नहिं रे।
हरि की कथा सोहाय नाहीं स्वपच तूलै ताहिं रे॥
मित्र शत्रु अजात सब तें अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहां जानै तीन लोक पवेत रे॥
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुंजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यों न तरै रैदास रे॥

५

जो तुम गोपालहिं नहिं जैहौ।
तो तुम का सुख में दुख उपजै सुखहि कहां ते पैहौ॥
माला नाय सकल जग डह को झूठो भेख बनै हौ।
झूंठे ते सांचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ॥
कनरस बतरस और सबै रस झूंठहि मूंड़ डोलैहौ।
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझ जैहौ॥

जो जन राम नाम रंगराते और रंगन सोहै हौ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ॥

६

प्रभु जी संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥

गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम नाम गंगोदक पायो॥
स्वाति बूंद बरसे फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूंद कै मोती निपजै संगत की अधिकाई॥
तुम चंदन हम रेंड बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम आवै बास सुबासा॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊंच कियो है कह रैदास चमारा॥

७

अब कैसे छुटै नाम रट लागी॥ टेक॥

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरे दिन राती॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सोहागा॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

गुरु नानक

दोहे

जागो रे जिन जागना, अब जागनि की वारि।
फेरि कि जागो "नानका", जब सोवड पांव पसारि॥
मित्रां दोस्त माल धन, छंडि चले अति भाइ।
संगि न कोई "नानका", उह हंस अकेला जाइ॥
जेही पिरीति लगंदिया, तोड़ निबाहू होइ।
"नानक" दर गह जां दियां ढक्क न सक्के कोइ॥
सूरा एक न आखियम, जो लड़नि दला में जाय।
सूरे सोई नानका जो, मंनगु हुकुम रजाय॥
हिरदे जिनके हरि बसे, ए जान कहियहि सूर।
कही न जाई "नानका", पूरि रह्या भर पूर॥
मन की दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहां ते होइ।
कउड़ी वदली नानका, जन्म चल्या नर खोइ॥

पद

१

सब कछु जीवन को व्योहार।
माता पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार।
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार॥
आध घरी कोऊ नहीं राखै घर तें देत निकार॥
कहु नानक भज राम नाम नित जातें हो उद्धार॥

२

मन की मन ही माहिं रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो मानस देह लही ॥
"नानक" कहत मिलन की बिरियां सुमिरत कहा नहीं ॥

३

जो नर दुःख में दुःख नहिं मानै ॥
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै ॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष शोकतें रहे नियारो नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सकल त्यागिकै जगते रहै निरासा ॥
काम क्रोध जेहि परसैं नाहिन ते हि घट ब्रह्म निवासा ॥
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं नित यह जुगति पिछानी ॥
नानक लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी संग पानी ॥

४

रे मन कौन गत होइ है तेरी।
यहि जग में रामनाम, सोतो नहिं सुन्यो कान,
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह ;
दारा सुत भयो दीन, पडाहुं परी बेरी ॥
"नानक" जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार ;
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जाकी चेरी ॥

५

सुमरन करले मेरे मना।
तेरी बिति जाति उमर हरिनाम बिना॥
कूपनीर बिनु धेनु छीर बिनु मंदिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिनु हीना तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
देह नैन बिन रैन चंद बिन धरती मेह बिना।
जैसे पंडित वेद विहीना तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो छांड दे अब संत जना।
कहे "नानक शा" सुन भगवंता या जग में नहिं कोई अपना॥

दादू

दोहे

निर्मल गुरु का ज्ञान गहि, निर्मल भगति विचार।
निर्मल माया प्रेमरस, छूटे सकल विकार ॥१॥
निर्मल तन मन आतमा, निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंचकरि, दादू लंघे पार ॥२॥
सरवर भरिया दह दिसा, पंखी प्यासा जाइ।
दादू गुरु परसाद विन, क्यों जल पीवै आइ ॥३॥
मन माला तहँ फेरिये, जहँ आपै एक अनंत।
सहजैं सो सतगुर मिल्या, जुग जुग फाग बसन्त ॥४॥
यहु मसीत यहु देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बन्दगी, बाहरि काहे जाइ ॥५॥
दादू सुधि बुधि आतमा सतगुरु परसै आइ।
दादू भृंगी कीट ज्यों देखत ही ह्वै जाइ ॥६॥
दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न विसारि।
मूरति मनमां है बसी, साँसै साँस सँभारि ॥७॥
एक राम के नाँव बिन, जिव की जरनि न जाइ।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ ॥८॥
सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखै एक कौ, दूजा नाहीं और ॥९॥
नैनहुं आगे देखिये, आतम अन्तर सोइ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिल मिल झिल मिल होइ ॥१०॥

विगसि विगसि दरसन करै, पुलिक पुलिक रस पान।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥११॥
निरखि निरखि निज नांव ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव कौं मलै, निरखि निरखि सुख जीव॥१२॥
आसा अपरंपार की, बसि अंबर भरतार।
हरे पटम्बर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥१३॥
वसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनंत अपार।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥१४॥
रोम रोम रस प्यास है, दादू करहिं पुकार।
राम घटा दल उमँगि करि, बरिसहु सिरजन हार ॥१५॥

———

मलूकदास

दोहे

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करे, मैं पाया बिसराम॥ १॥
जीवहुँ ते प्यारे अधिक, लागैं मोहीं राम।
बिन हरि नाम नहीं मुझे और किसी से काम॥ २॥
कह मलूक हम जबहिं तें लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि डारि भरम की पोट॥ ३॥
गाँठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक।
नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र को रंक॥ ४॥
साहेब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि ले।
जबहीं गुरू किरिपा करें, तबहिं राम कछु दे॥ ५॥
जो तेरे घर प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अन्तर जामी जानि है, अन्तर गत का भाव॥ ६॥
गुप्त प्रगट जेही करी, करे मन की खूम।
अन्तर जामी राम जी, सब तुमको मालूम॥ ७॥
सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखे न कोय।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय॥ ८॥

पद

१

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ सुन साहेब रहमाना॥

हुआ अलमस्त खबर नहीं तनकी, पीया प्रेम पियाला।
ठाढ़ होहुँ तो गिर गिर परता तेरे रंग मतवाला॥
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं दिल ही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये में देखा, मूरा मुरसिद पाया॥

(२)

नैया मेरी नीके चलन लगी।
आंधी मेंह तनिक नहीं डोलौ साहु चढ़े बड़ भागी॥
राम राम डगमगी छोड़ाई, निर्भय कड़िया लैया।
गुन लहासि की हाजत नाहीं, आछा साज बनैया॥
अवसर परै तो पर्वत बोझै, तहूँ न होवै भारी।
धन सत गुरु यह जुगुति बताई, तिनकी मैं बलिहारी॥
सूखे पड़े तो कछु डर नाहीं, ना गहिरे का संसा।
उलटि जाय तो बार न बांकै, याका अजब तमासा॥
कहत मलूक जो बिन सिर खेवै, सो यह रूप बखानै।
या नैया की अजब कथा कोई बिला केवट जानै॥

(३)

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहैं, ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक॥
साहेब मिल साहेब भये, कछु रह न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न पाई॥

(४)

सदा सोहागिन नारि सो, जाके राम भतारा।
मुख मांगे सुख देत हैं, जग जीवन प्यारा॥
नर देंही दिन दोय की, सुन गुरूजन मेरी।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी॥
ना उपजै न वीनसै, संतन सुखदाई।
कहैं मलूक यह जानि कै, मैं प्रीति लगाई॥

मलिक मुहम्मद जायसी

पद्मावती-सौन्दर्य

बेनी छोरि झार जौ केसा। रैनि होई, जग दीपक लेसा ॥
सिर हुंत बिसहर परे भुइं बारा। सगरों देश भएउ अंधियारा ॥
सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहरि भरे लह कहिं अति कारे ॥
जानहुं लोटहिं चढ़े भुअंगा,। बेधे बास मलयगिरि अंगा ॥
लुरहि मुरहिं जनु मानहिं केलीं। नाग चढ़े मालति कै बेलीं ॥
लहरें देइ जनहु कालिंदी। फिर फिर भंवर होय चित बन्दी ॥
चवर दुरत आछे चहुँपासा। भंवर न उड़हिं जो लुबुधे बासा ॥

होइ अंधियार बीजु धन लौपे, जब हि चीर गहि झांप ॥
केस नाग कित देख मैं, संवरि संवरि जिय कांप ॥

मांग जो मानिक सेंदुर रेखा। जनु बसन्त राता जग देखा ॥
कै पत्रावली पाटी पारी। औ रचि चित्र विचित्र संवारी ॥
भए उरेह पुहुप सब नामा। जनु बग बिखर रहे घनसामा ॥
जमुना मांझ सुरसती मंगा। दुहुं दिनि रही तरंगिनि गंगा ॥
सेंदुर रेख सो ऊपर राती। बीर बहूटिन्ह कै जसि पांती ॥
बलि देवता भए देखि सेंदूरू। पूजै मांग भोर उठ सूरू ॥
भोर सांझ रवि होए जो राता। ओहि रेखा राता होइ गाता ॥

बेनी कारी पुहुप लेइ, निकसी जमुना आइ।
पूज चन्द्र आनन्द सौं, सेंदुर सीस चढ़ाइ ॥

दुहुज लिलार अधिक मनियारा। संकर देखि माथ तहं धारा॥
यह नित दुइज जगत सब दीसा। जगत जौहरै देह असीसा॥
ससि जो होइ नहि सरवरि छाजै। होइ सो अमावस छपि मन लाजै॥
तिलक संवारि जो चुन्नो रची। दुइज मांझ जानहुं कचपची॥
ससि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़ दाहू॥
पारस जोत लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोति॥
सिरि जो रतन मांग बेठारा। जानहु गगन टूट निसि धारा॥
ससि औ सूर जो निरमल, तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहिं, पुनि पुनि होहिं अलोप॥

राजा का स्वर्गवास (पद्मावत से)

तौ लहि श्वास पेट महूं अही। जौ लहि दशा जाउ की रही॥
काल आइ देखलाई सांटी। उठि जिय चला छांड़ के माटी॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य संसारू॥
वही घड़ी सब भयो पराया। आपन सोइ जो परसा खावा॥
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लाग काढ़त तेहि वेगी॥
हाथ झार जस चलै जुवारी। तजो राज ह्वै चला भिखारी॥
जब लग जीव रतन सब काहा। भा बिन जीव न कौड़ी लाहा॥
गढ़ सौंपा तेहिं बादल, गये टेकत बसुदेव।
छोड़ी राम अयोध्या, जो भावै सो लेव॥
पद्मावती पुनि पहरि पटोरा। चली साथ प्रिय के ह्वै जोरा॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई। पूनो शशि सो अमावस भई॥
छोरे केश मोति लट छूटी। जानो रयनि नखत सब छूटी॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी। आग लाग चहि जग अंधियारी॥

यही दिवस हों चाहत नाहीं। चलो साथ पिय दै गलबाहीं ॥
सारस पंखि नहिं जिये निरारे। हौं तुम बिन का जियों पियारे ॥
न्योछावर के तन छहराऊँ। छार होऊं संग बहुर न आऊं ॥
दीपक प्रीति पतंग ज्यों, जन्म निवाह करेउं।
न्योछावर चहुंपास ह्वै, कंठ लाग जिय देउं ॥

पद्मावती का सती होना।

नागमती पद्मावती रानी। दोउ महासत सती बखानी ॥
दोउ सौत चढ़ खाट जो बैठी। औ शिवलोक परा तहं दीठी ॥
बैठो कोई राज औ पाटा। अन्त सबै बैठे पुनि खाटा ॥
चन्दन अगर काढ़ सर साजा। औ गति देय चले लै राजा
बाजन बाजहिं होय अगोता! दोउ कन्त लैं चाहैं सोता ॥
एक जो बाजा भयो विवाहू। अब दूसरे है और निबाहू ॥
जियत जलै जौ कन्त की आसा। मुयें रहम बैठे इक पासा ॥
आज सूर दिन अथयो, आज रयनि शशि बूड़।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड़ ॥
सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा, सात बार फिर भांवर लीन्हा ॥
एक जो भांवर भयो बियाही। अब दूसर ह्वै गोहन जाही ॥
जियत कन्त तुम हम गल लाई। मुये कंठ नहिं छाड़हु साई ॥
लै सर उपर खाट बिछाई। पौढ़ी दोउ कन्त गल लाई ॥
और जो गांठ कन्त तुम जोरी। आदि अन्त लहि जाय न छोरी ॥
यह जगकाह जो अथहि न याथी। हम तुम नाह दोहू जग साथी ॥
लागी कंठ अंग दै होरी। छार भई जर अंग न मोरी ॥
राती पिया के नेह की, स्वर्ग भयो रतनार।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोई संसार ॥

वे सहगवन भई जिय आई। बादशाह गढ़ छेका धाई।
तब लग सो अवसर ह्वै बीता। भये अलोप राम औ सीता॥
आय शाह जो सुना अखारा। ह्वै गइ रात दिवस उजियारा॥
छार उठाय लीन इक मूठी। दीन्ह उड़ाइ पिरथवी झूंठी॥
सगरे कटक उठाई माटी। पुल बांधा जहं जहं गढ़ घाटी॥
जौ लहि उपर छार नहिं परै। तौ लहि यह तृष्णा नहिं मरै॥
भा दहवा भा जूझ असूझा। बादल आय पंवर पर जूझा॥

जून्हर भई सब स्त्री, पुरुष भये संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा, चितौर भा इसलाम॥

मैं यह अर्थ पंडितन बूझा। कह कि हम कुछ और न सूझा॥
चौदह भुवन जोहत उपराहीं। सो सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा॥
गुरू सुवा जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत सो निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाचा सोई न यह चित बन्धा॥
राघव दूत सोइ शैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
कथाप्रेम यह भांति विचारू। बूझ लेहू जो बूझहि पारू॥

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि॥

मुहमद कवि यह जोर सुनावा। सुना सो प्रेम पीर का पावा॥
जोरे लाय रक्त ले गये। प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा। की यह रीति जगत महं चीन्हा॥
कहां सो रतनसेन अब राजा। कहां सुवा अस बुध उपराजा॥
कहां अलाउदीन सुलतानू। कहं राघव जेहि कीन्ह बखानू॥

कहं सुरूप पद्मावति रानी। कुछ न रही जग रही कहानी॥
धन साईं यह कीरति तासू। फूल मरै पर मरै न बासू॥

कौन जगत यश बेंचा, कौन लीन यश मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम संवरैं दोउ बोल॥

मुहम्मद वृद्ध वैस जो भई। यौवन हम सो अवस्था गई॥
बल जो गयो कै खीन शरीरू। दृष्टि गई नयनहिं दै नीरू॥
दसन गये कै वचा कपोला। बैन गये अनरुच दै बोला॥
बुधि जो गई दै हिय बौराई। गर्व गयो तरिहत शिर नाई॥
श्रवण गये ऊंच जो सूना। स्याही गये सीस भा धूना॥
भंवर गये केसहि दे भुवा। यौवन गयो जीत ले जुआ॥
जो लहि जीवन जोवन साथा। पुनि सो मीच पराये हाथा॥

अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं॥
आपुहि आप जो देखइ चहा। आपन प्रभुता आपसे कहा॥
सबइ जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सउजा आपु अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूल बन फूले। आपुहि भंवर बासरस भूले॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखनहारा॥
आपुहि घटघट महँ सुख चाहइ। आपुहि आपन रूप सराहइ॥

पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ॥

सा सांसा जड़ लहि दिन चारी। ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी॥
अंध न रहहु होहु डिठिआरा। चीन्हि लेहु जो तोहि संवारा॥
पहले से जो ठाकुर कीजिय। अइसे जियन मरन नहिं छीजिय॥
छाड़हू घिउ अरु मछरी मासू। सूखे भोजन करहु गरासू॥
दूध मास घिव करु न अहारू। रोटी सान करहु फरहारू॥
यहि विधि काम घटावहु काया। काम क्रोध तिसना मद माया॥
कव वइठउ वजरासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी॥

प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बांधि।
पारवि जइस और कहं, लागि रहइ सर साधि॥

गोस्वामी तुलसीदास

राम-चरित-मानस

परशुराम लक्ष्मण संवाद

तेहि अवसर मुनि सिव धनु भंगा। आए भृगु कुल कमल पतंगा।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जिमि लवा लुकाने।
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विसाल त्रिपुंड बिराजा।
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसि वस कछुक अरुन होइ आवा।
भृकुटी कुटिल नयन रिसवाते। सहज हुँ चितवत मनहुँ रिसाते।
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृग छाला।
कटि मुनि-बसन तून दुइ बांधे। धनु सर कर कुठार कल कांधे।

संत बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु वीर रसु, आयेउ जहँ सब भूप॥

देखत भृगुपति वेषु कराला। उठे सकल भयबिकल भुआला।
पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंड प्रणामा।
जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा।
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी।
विस्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई।
रामुलषनु दसरथ के ढोटा। देखि असीस दीन्ह भल जोटा।
रामहिं चितै रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन।

बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूँछत जाति अजान जिमि, ब्यापेउ कोपु सरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए।
सुनत वचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे।
अतिरिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़ नत आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी।
मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी।
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेषु कलप सम बीता।

समय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्री रघुवीरु॥

नाथ संभु-धनु-भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिअ किन मोंही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करि अलराई।
सुनहु राम जेहि सिव-धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। नतु मारे जैहैं सब राजा।
सुनि मुनिवचन लषन मुसकाने। बोले परसु धरहि अपमाने।
बहु धनुही तोरी लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्ह गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू।

रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार॥

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।
का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।

छुअत टूट रघुपति नहिं दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू।
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहु स्वभाव न मोरा।
बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहिं मोही।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित क्षत्रियकुल द्रोही।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं। विपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परशु बिलोकु महीप कुमारा।

मातु पितहिं जनि सोचबस, करसि महीप किसोर।
गरभन के अरभक दलन, परसु मोर अति घोर।

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महाभटमानी।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना।
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।
बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पा परिय तुम्हारे।
कोटि-कुलिस-सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनुबान कुठारा।

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि, बोले गिरा गंभीर।

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल काल बस निजकुल घालक।
भानु-बंस-राकेस कलंकू। निपट निरंकुस निठुर निसंकू।
काल कवलु होइहि छिन माँहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं।
तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा।
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा।
अपने मुँह तुम्ह आपन करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।

नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।
बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलापु।

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा, बार बार मोहिं लागि बुलावा।
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधार धरेउ कर घोरा।
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुबादी बालक बध जोगू।
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा। अब यह मरनिहार भा साचा।
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल-दोष-गुन गनहिं न साधू।
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरु द्रोही।
उत्तर देत छाँड़ौं बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे।
न तु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहिं उरिन होतेउँ श्रम थोरे।

गाधि सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरिअरै सूझ।
अयमय खाँड़ न उखमय। अजहुँ न बूझ अबूझ।

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। का नहिं जान बिदित संसारा।
माता-पितहिं उरिन भए नीके। गुर रिन रहा सोच बड़ जी के।
सो जनु हमरे हि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा।
अब आनिअ ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा।
भृगुवर परसु देखावहु मोहीं। बिप्र बिचारि बचौं नृपद्रोही।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे।

लखन-उत्तर आहुत सरिस, भृगु-वर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल भानु।

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू।
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबर करै अयाना।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी।
राम बचन सुन कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने।
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी।
गौर सरीर स्याम मन माहीं। काल कूट मुख पय मुख नाहीं।
सहज टेढ़ अनुहरै न तोहीं। नीच मीच सम देखत मोहीं।

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विस्व प्रतिकूल।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिअ अब दाया।
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिअ होइहि पाय पिराने।
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई।
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं।
थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी।
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तन जरै होइ बलहानी।
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं बिचारी बंधु लघु तोरा।
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस-भरा कनक घट जैसे।

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम।

अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिअ नहिं काना।
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहिं न संत विदूषहिं काऊ।
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।

कृपा, कोप, वध, बंध गोसाईं। मोपर करिअ दास की नाईं।
कहिअ वेगि जेहि विधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई।
कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं काह कोप करि कीन्हा।

गर्भ श्रवहिं अवनिप रवँनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत, वैरी भूप किसोर।

बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती।
भयेउ वाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा असि काऊ।
आजु देव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बहुरि सिरु नावा।
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला।
जो पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भए तन राखु बिधाता।
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू।
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा।
बिहँसे लखन कहा मुनि पाहीं। मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।

परसु राम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
संभु सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध।

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे।
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहित छाँडु कहाउब रामा।
छल तजि करहि समर सिवद्रोही। बंधु सहित नत मारौं तोही।
भृगुपति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिरनाए।
गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुं तें बड़ दोषू।
टेढ़ जानि सँका सब काहू। बक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू।
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा।
जेहिरिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी।

प्रभु सेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोसु।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु।

देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भै लरिकहि रिस वीरु बिचारी।
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। बंस सुभाव उतरु तेइ दीन्हा।
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं।
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी।
हमहि तुम्हहिं सरवरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा।
देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे।
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे।

बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तहूँ बंधु सम बाम।

निपटहि द्विजकरि जानहि मोहीं। मैं जस विप्र सुनावौं तोहीं।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पसु आई।
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हें। समर जग्य जग कोटिक कीन्हें।
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे।
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा।
राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी।
छूअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।

जौं हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ।

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना।
जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुलकलंक तेहि पांवर जाना।
कहौं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी।
विप्रवंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई।
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसु-धर-मति के।
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन विस्मय भयेऊ।

जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेमु समात।

जय रघुबंस-बनज-बन भानू। गहन-दनुजकुलदहन कृसानू।
जय सुर-विप्र-धेनु-हित कारी। जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी।
विनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छवि कोटि अनंगा।
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा।
अनुचित बचन कहेउं अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।
करि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहिं तपहेतू।
अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवहिं पराने।

देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहि फूल।
हरषे पुर-नर-नारि-सब, मिटा मोहमय सूल।

———

सीता की शोभा

जनम सिंधु पुनि बंधु विष, दीन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥
घटइ बढ़इ बिरहिन दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।
वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
सिय शोभा नहिं जाय बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी।
उपमा सकल मोंहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई।
जौ पटतरिय तीय महं सीया। जग अस जुवति कहां कमनीया।
गिरा मुखर तनु अरघ भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
विष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही।
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदर सिंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू।

एहि विधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि संकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल।

सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।
तात तुम्हारी मातु वैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।
गुरु पितु मातु बंधु अरुसाईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते।
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।

भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ।

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई।
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। राम विमुख सुत तें हित जानी।
तुम्हरेहिं भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।
राम रोष इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इनके बस होहू।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।
तुम्ह कहँ बन सब भांति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू।
जेहिं न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहेइ उपदेसू।

उपदेसु यह जेहिं तात तुम्हरें राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।
तुलसी प्रभुहि सिख देई आयसु दीन्ह पुनि आसिस दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुवीर पद नित नित नई।

भगवान के रहने के स्थान

बालमीकी हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिय रसबोरी।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।
जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।

भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक।

जस तुम्हार मानस विमल, हँसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नितनासा।
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।
सीस नवहिं सुरगुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी।
कर नित करहिं रामपद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। विप्र जेंवाइ देहिं बहुदाना।
तुम्हतें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाग्य सेवहिं सनमानी।

सब करि माँगहिं एक फल, राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।
तुम्हहिं छांड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष ते विष भारी।
जे हरषहिं पर सम्पति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेखी।
तिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे।

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित वैदेही।
जाति पांति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।
सब तजि तुम्हहिं हिरह उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई।
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनुबाना।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु।

रामराज

बरनाश्रम निज निज धरम, निरतबेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं ब्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिनीति।
चारिउ चरन धर्म जगमाहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिं कवनेउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
सब निर्दम्भ धर्मरत गुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपटसयानी।

रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जगमाहिं।
काल कर्म सुभाव गुन। कृतदुख काहुहि नाहिं।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासु।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।
सोउ महिमा खगेस जिन जानी। फिर एहि चरित तिनहुँ रतिमानी।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दमसीला।
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर-नारी।
एक नारि व्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पतिहितकारी।

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचन्द्र के राज।

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।
खग मृग सहजु बयरि विसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
कूजहिं खगमृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।
लता विटप मांगें मधु चवहीं। मन भावती धेनु पथ स्रवहीं।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता यह कृतजुग कै करनी।
प्रगटी गिरिन्ह विविध मनि खानी। जग दातमा भूप जग जानी।
सरिता सकल बहहिं बरवारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।
सरसिजसंकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।

विधु महि पूर मयूखन्हि, रवितप जेतनेहि काज।
मांगें वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज।

विजय-रथ

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहि तन पदत्राना। केहि बिधि जितब बीरबलवाना।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरतिचर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। समजम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरपूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर।

सन्त-लक्षण

संत असंतन्ह कै अस करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुन भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई।

ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाह पीटत घनहिं, परसु वदन यह दंड।

विषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।
सबहिं मानप्रद आप अपानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।

त्रिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति विनती मुदितायन।
सीलता सरलता भयत्री। द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।
समदम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहीं नहिंबोलहिं।

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता सम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुखपुंज।

राम सतसई

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमनि ज्ञान दृढ़ होइ।
तुलसी बिना उपासना, बिन दूलह की जोई ॥१॥
राम चरण अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुंद गहि, तुलसी उड़न अकास ॥२॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥३॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी राम कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इकठाम ॥४॥
सम्पत्ति सकल जगत की, स्वासा सम नहिं होइ।
सो स्वासा तजि राम पद, तुलसी अलग न खोइ ॥५॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन रहन को, गनिका परम प्रवीन ॥६॥
स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होना दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास ॥७॥
तुलसी सब छल छांड़िकै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह ॥८॥
कोटि विघ्न संकट विकट. कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं कर सकै, जो सुदिष्ट रघुनाथ ॥९॥
लगन महूरत योगबल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥१०॥

ऊंची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥११॥
होइ अधीन याचै नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानो मांगनहिं, को वारिद विनु देइ ॥१२॥
मान राखिवो मांगिवो, प्रिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फवै, जब चातक मत लेहु ॥१३॥
गंगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भरपूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर ॥१४॥
एक भरोसे एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसीदास ॥१५॥
राम राम रटिवो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई तें पौरिवो, धोखेहुं बूड़ि न जाय ॥१६॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिए, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है, स्वांस सार सो तीर ॥१७॥
असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त समागम रामधन, तुलसी दुर्लभ दोइ ॥१८॥
तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुं ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥१९॥
तुलसी अपने राम कहं, भजन करहुं निरसंक।
आदि अन्त निर्वाहिवो, जैसे नव को अंक ॥२०॥
तुलसी राम सनेह करु, त्याग सकल उपचारु।
जैसे घटत न अंक नव, नव के लिखत पंहारु ॥२१॥
तुलसी मंत सुअंबु तरु, फूल फलहिं पर हेतु।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत ॥२२॥

गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥२३॥
काम क्रोध मद लोभ की, जौ लों मन में खान।
तौ लों पण्डित मूरखौं, तुलसी एक समान ॥२४॥
प्रेम अरु पुन्य अघ, यश अपयश जय हान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥२५॥
तौ लग योगी जगत गुरु, जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥२६॥
उरग तुरंग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥२७॥

विनय पत्रिका

१

गाइये गनपति जगबंदन, संकर 'सुवन भवानी' नंदन।
सिद्धि सदन गजबदन विनायक, कृपासिंधु सुदर सब लायक।
मोदक-प्रिय मुद मंगल दाता, विद्यावारिधि बुद्धिविधाता।
मांगत "तुलसिदास" कर जोरे, बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

२

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी॥
निज घर की बर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाथ सवारत हौं आयों न कवानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रशंसा विनय व्यंग जुत सुनि विधि की वर बानी।
"तुलसी" मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी॥

३

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरन भव भय दारुनं।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुनं॥
कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं॥
पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं।

भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्यवंश निकंदनं ।
रघुनन्द आनंदकन्द कौसलचन्द दसरथ नन्दनं ॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषनं ।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर दूसनं ॥
इमि वदत "तुलसीदास" शंकर शेष मुनि मनरंजनं ।
मम हृदय कंज निवास करु कामादि खल दल गंजनं ॥

४

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं ॥
पायौ नाम चारु चिन्तामनि उर करतें न खसैहौं ।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परवस जानि हंस्यो इन इन्द्रिय निज वस ह्वै न हसैहौं ।
मन मधुकर मन करि "तुलसी" रघुपति पद कमल वसैहौं ॥

५

मन पछतैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप बचे न काल वली ते ।
हम हम करि धन धाम संवारे अन्त चले उठि रीते ॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते ।
अन्तहु तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिनि "तुलसी" कहुं विषय भोग बहु घीते ॥

६

तू दयाल, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हूं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सों ।
मो समान आरत नाहिं आरतहर तो सों ॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब विध हित मेरो ॥
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों "तुलसी" कृपाल चरण शरण आवै ॥

७

ममता तू न गई मेरे मन तें ।
पाके केस जन्म के साथी लाज गई लोकन तें ।
तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन तें ॥
सरवन वचन न सुनत काहु के बलगये सब इन्द्रिन तें।
टूटें दसन वचन नहिं आवत सोभा गई मुखन तें ॥
कफ पित बात कंठ पर बैठे सुतहिं बुलावत कर तें ।
भाइ बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर तें ॥
जैसे ससिमंडल विच स्याही छुटै न कोटि जतन तें ।
"तुलसिदास" बलि जाउं चरन तें लोभ पराये धन तें ॥

८

कबहुंक हौं इहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो ।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो ॥

परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगी ।
"तुलसिदास" प्रभु इहि पथ रहिअविचल हरिभक्ति लहौंगी ॥

९

केसव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मन ही मन रहिये ॥
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरे भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥
रवि कर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन हीन से ग्रसे चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबन्ध कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

१०

माधव असि तुम्हारी यह माया ।
करि उपाय पचि पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव विनु मोह जनित भव,दारुन विपति सतावै ॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो, पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल-रूप विषय, कारन निसि बासर धावै ।
जेहि के भवन विमल चिन्तामनि, सो कत कांच बटोरै ।
सपने पर बस परै जागि, देखत केहि जाइ निहोरै ।
ग्यान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ।

बरवै रामायण

कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुन्डल लोल ।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल ॥१॥
केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥२॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥३॥
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह विगसाय ॥४॥
चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥५॥
सिअ तुअ अंग रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥६॥
का घूँघट मुख मूंदहु नवला नारि ।
चांद सरल पर सोहत यहि अनुहारि ॥ ७॥
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छांह ॥ ८॥
स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम ।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ९॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकार ।
ए अंखियां दोउ बैरिनि देहिं बुताय ॥ १०॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागै मोहिं बिनु राम ॥ ११॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ ।
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होइ ॥ १२ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ ।
उलटा जपत काल तें भये ऋपिराउ ॥ १३ ॥
केहि गनति महं गनती जस वन घास ।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥ १४ ॥
नाम भरोस नाम वल नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु ॥ १५ ॥

———

गीतावली

१

पौढ़िये लाल पालने हों झुलावौं।
बाल विनोद मोद मंजुल मति किलकनिखानि खुलावौं।
तेह अनुराग तागग्रहिवं कहुँ मति मृगनयनि बुलावौं।
"तुलसी" मनित भली भामिनि उन सो पहिराइ फुलावौं।
चारुचरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाह चरन चित लावौं।

जागिये कृपानिधान जानि राय रामचन्द्र
जननि कहै बार बार भोर भयो प्यारे।
राजिवलोचन विसास प्रीति वापिका मराल
ललित कमल वदन ऊपर मदन कोटि वारे।
अरुन उदित विगत सर्वरी ससांक किरिन हीन
दीन दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे।
मनहुँ ज्ञान धन प्रकाश बीते सब भव विलास
आस त्रास तिमिर तोम तरनि तेज जारे।
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे।
मनहु वेद बन्दी मुनि वृन्द सूत मागधादि
विरुद वदत जय जय जय जयति कैटभारे।
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जञ्जाल विपुल दुखकदम्ब हारे।

"तुलसिदास" अति आनन्द देख के मुखारविन्द
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे।

३

जननी निरखत वाल धनुहिआं।
बार बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिआं॥
कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सकारे।
उठहु तात बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहत बड़बार भई ज्यों जाइ भूप पै भैया।
बन्धु बोलि जेइयै जो भावै गई नेछावरि मैया॥
कबहुँ समुझि वन गमन राम को, रहि चकि चित्र लिखी सी।
"तुलसीदास" या समय कहेते लागति प्रीति सिखी सी॥

४

बैठी सगुन मनावति माता।
कब अइहैं मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बात॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित विलोकि नयन भरि रामलखन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बुलाइ पाय परि पूछति प्रेम मगन मृदुबानी॥
तेहि अवसर कोइ भरत निकट ते समाचार लै आयौ।
प्रभु आगमन सुनत "तुलसी" मानो मीन भरत जल पायौ॥

———

कृष्ण गीतावली

१

मोकहं भूंठहि दोस लगावहि ।
मैया इनहिं बानि परि गृह की नाना युक्ति बनावहिं ॥
अन्त के लिये खेलिबो छांड्यो तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं ॥
कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं ।
करहि आपु शिर धरहिं आनके बचन विरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याय करहि काहू को ते शिशु मोहिं न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।
बाल गोपाल केलि कलि कीरति "तुलसिदास" मुनि गावहिं ॥

२

देखु सखी हरि बदन इन्दू पर ।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छवि कहि न जाय शोभा अनूपवर ॥
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर ।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचार डरहिं उर ॥
अरुन वनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर ।
मनहुँ सिन्धु निज सुतहि मनावन पठये युगल बसीठि वारिचर ॥
नन्द नन्दन मुख की सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमावर ।
"तुलसिदास" त्रैलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविधशूलहर ॥

३

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं ।
चरणारविन्दमहं भजे भजनीय सुरनर दुर्लभं ॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं ।
किंजल्क वसन किशोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं ॥
सिर केकि पच्छ विलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचनं ।
गुञ्जावतंस विचित्र सव अंग धातु भवभय मोचनं ॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रूराका मयङ्क समाननं ।
अपहरत "तुलसीदास" त्रास बिहार वृन्दा काननं ॥

———

जानकी मङ्गल

(सांहर छन्द)

देखि सपुर परिवारजनक हिय हारेउ।
नृप-समाज जनु तुहिन वनज वन मारेउ॥
कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन।
लखहिं भानुकुल भानु इसान-सरासन॥
मुनिवर तुम्हरे वचन मेरु नहिं डोलहिं।
तदपि उचित आचरन पांच भल बोलहिं॥
वान बान जिमि गयउ गवहिं दसकन्धर।
को अवनीतल इन सम वीर धुरन्धर॥
पारवती मन सरिस अचल धनुघालक।
हैं पुरारि तेउ एक नारि व्रत पालक॥
सो धनु कहिय विलोकन भूप किसोरहिं।
वेध कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं॥
रोम रोम छवि निदरत सोम मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सों जनि॥
मुनि हँसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥

पार्वती मङ्गल

तजे भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहुँ ते अगम तपहिं लायो मनु॥

सकुचहि बसन विभूषन परसत जो वपु।
तेहि सरीर हर हेत अरंभेउ बड़ तपु॥
पूजहिं शिवहिं समय तिहुँ करहिं निमज्जन।
देखि प्रेम व्रत नेम सराहहिं सज्जन॥
नींद न भूख पियास सरिस निसि वासर।
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हर॥
कन्दमूल फल असन कबहुँ जल पवनहिं।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहिं॥
नाम अपरना भयेउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे॥
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ॥
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदय अस आयउ॥

कवितावली

१

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौ सोच विमोचन को ठगिसी रही जे न ठगे धिकसे॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखं जन जानक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

२

तनकी दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग को दूरि धरैं॥

दमकैं दँतियां दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरैं॥

३

वरदंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जुगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्राण करैं तुलसी बलि जाऊं ललाइन बोलन की॥

४

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उपम अंगति पाई।
औध तजी मग वास के रुख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं॥

५

पुर ते निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दये मग में डगद्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पट सूखि गये मधुराधर वै
फिर बूझति हैं चलनोऽव कितो पिय पर्न कुटी करहौ कितह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जलच्वै।

६

जलकों गये लक्खन हैं लरिका परखो पिय छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछ पसेउ बयारि करों अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि विलम्ब सों कंटक काढ़े॥
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तन वारि विलोचन बाढ़े॥

७

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहें ।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्रामबधू सिय सों कहो सांवरो सो सखि रावरो को हैं ॥

८

कतहुँ बिटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत ।
कतहुँ वाजि सो वाजि मर्दि गजराज करष्षत ॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर वज्जत ।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत ॥
लंगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत ।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥

९

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाय का करी ।
वेदहुँ पुरान कही लोकहुँ बिलोकियत
सांकरे समै के राम रावरे कृपा करी ।
दारिद्र दसानन दबाई दुनि दीनबन्धु
दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी ।

————

हृदय राम

१

देखन जो पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक, हाथ
दूजो न लगाऊँ, वार करौं एक कर को।
मीजि मारौं उर ते उखारि भुजदंड, हाड़
तोरि डारौं बर अवलोकि रघुबर को॥
कासों राग द्विज को, रिसात भहरात नाम,
अति थहरात गात लागत है घर को।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप कीनो,
को है वह आप चाप तोर्‌यो जिन हर को॥

२

जानकी को मुख न विलोक्यो ताते कुंडल
न जानत हौं, वीर पायँ छुवै रघुराइ के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे
ताते कंकन न देखे बोल कह्यो सतमाह के॥
पायँन के परिबे कौ जाते दास लछमन
यातें पहिचानत है भूपन जे पायँ के।
बिछुआ हैं एई, अरु झांझ हैं एई जुग,
नूपुर हैं तेई राम जानत जराइ के॥

३

सातों सिंधु सातों लोक, सातों रिषि हैं ससोक,
सातों रवि घोरे घोरे देखे न डरात मैं।
सातों दीप, सातों ईति काँ प्योई करत और
सातों मत रात दिन प्रान है न गात मैं॥
सातों चिरजीव बरराइ उठे वार बार,
सातों सुर हाय हाय होत दिन रात मैं।
सात हूँ पताल काल सबद कराल, राम
भेदे सात ताल, चालपरी सात सात मैं॥

४

एहो हनू कह्यौ श्री रघुबीर
कछू सुधि है सिय की छितिमाहीं ?
है प्रभु लंक कलंक बिना
सुबसै तहँ रावन बाग की छाँहीं।
जीवित है ? कहिवेई को नाथ,
सु क्यों न मरी हमतें बिछुराहीं ?
प्रान बसै पद पंकज में जम
आवत है पर पावत नाहीं।

सूरदास

१

चरणकमल वंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥१॥

२

अविगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन, वाणी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुण जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै॥

३

शरण गये को को न उबारया॥
जब जब भीर परी संतन को चक्रसुदर्शन तहां सँभारयो॥
भयो प्रसाद जो अंबरीष को दुर्वासा को क्रोध निवारयो।
ग्वालन हेतु धरयो गोबर्धन प्रगट इन्द्र को गर्व प्रहारयो॥
कृपा करी प्रहलाद भक्त को, खंभ फारि उर नखन बिदारयो।
नरहरि रूप धरयो करुणा करि छिनक मांहि हरनाकुश मारयो॥
ग्राह ग्रसत गज को जल बूड़त नाम लेत वाको दुख टारयो।
सूरश्याम बिनु और करै को रंग भूमि में कंस पछारयो॥

४

जापै दीनानाथ ढरे।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ जिनपर कृपा करे॥
राजा कौन बड़ो रावण तें गर्बहि गर्व गरे॥
रंको कौन सुदामाहू ते आपु समान करे॥
रूपो कौन अधिक सीता तें जन्म बियोग भरे।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा ते हरि पति पाय बरे॥
जोगी कौन बड़ो शंकर तें ताको काम छरै।
कौन विरक्त अधिक नारद सों निसि दिन भ्रमत फिरै॥
अधम सु कौन अजामिल हू ते यम तहं जात डरै।
सूरदास भगवंत भजन बिन फिर फिर जठर जरै॥

५

कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
परनिंदा रसना के रस में अपने पर तखोए॥
तेल लगाय कियो रुचि मर्दन, वस्त्रहिं मलि मलि धोए।
तिलक बनाय चले स्वामी ह्वै, विषमनि के मुख जोए॥
काल बली ते सब जग कंपत, ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति उदर भरे परि सोए॥

६

बंदौं चरणसरोज तुम्हारे।
सुन्दर श्याम कमलदल लोचन ललित त्रिभंगी प्रानन प्यारे॥
जे पद पद्म सदाशिव के धन सिंधुसुता उर ते नहिं टारे।
जे पदपद्म परसि जलपावन सुरसरि दरस कटत अघ भारे॥
जे पदपद्म परसि ऋषिपत्नी, बलि, नृग, व्याध पतित बहु तारे।

जे पदपद्म रमत वृन्दावन, अहि सिर धरि अगणित रिपु मारे।
जे पदपद्म परसि व्रजभामिनि सर्वस दै सदन बिसारे।
जे पदपद्म रमत पांडवदल दूत भए, सब काज सँवारे॥
सूरदास तेई पदपंकज त्रिविध ताप दुख हरन हमारे॥

७

हृदय की कबहुं न जरनि घटि।
बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसे जात कटी॥
अपनी रुचि जितही तित खैंचति इन्द्रिय ग्राम गटी।
होति तहीं उठि चलति कपट लगि बाँध नयन पटी॥
झूठो मन झूठी यह काया झूठी आरभटी।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी॥
दिन दिन हीन छीन यह काया दुख जंजाल जटी।
चिंता गइ, औ भूख भुलानी नींद फिरत उचटी॥
मगन भयो माया रस लंपट समुझत नाहिं हटी।
ता पै मूंड़ चढ़ी नाचति है मीचति नीच नटी॥
खैंचत स्वाद श्वान पातर ज्यों, चातक रटत ठटी।
सूर जलधि सींचे करुणानिधि तिज जननि मिटीं॥

८

अब के नाथ मोहिं उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया लोभ लहरति रंग।
लये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंत॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार॥

काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बिहाल बिह्वल सुनो करुणामूल।
श्याम; भुज गहि काढ़ि लीजै सूर ब्रज के कूल॥

९

करुणामय ! तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै॥
जय अरु विजय करम कह कीनो ब्रह्म सराप दिवायो।
असुर योनि ता ऊपर दीनी धर्म्म उछेद करायो॥
पिता वचन खंडे जो पापी सो प्रहलादहि कीनो।
निकसे खंभ बीच ते नरहरि ताहि अभयपद दीनो॥
दान धर्म बहु कियो भानुसुत सो तुव विमुख कहायो।
वेदविरुद्ध सकल पांडवसुत सो तुम्हरो मन भायो॥
यागहि करत विरोचन को सुत वेद विमल विधि कर्मा।
सो छलि बांधि पताल पठायो कौन कृपानिधि धर्मा॥
द्विजकुल पतित अजामिल विषयी गणिका नेह लगायो।
सुत हित नाम लियो नारायण सो वैकुंठ पठायो॥
पतिव्रता जालंधरयुवती सो पतिव्रत ते टारी।
दुष्ट पुंश्चली अधम जो गणिका सुवा पढ़वत तारी॥
मुक्त हेतु योगी श्रम कीनो असुर विरोधहि पावै।
अविगत गतिकरुणामय तेरी सूर कहा कहि गावै॥

१०

अविगत गति जानी न परै।
मन वच अगम अगाध अगोचर केहि विधि बुधि संचरै॥

अति प्रचंड पौरुष वल पाये केहरि भूख मरै।
विन आशा विन उद्यम कीने अजगर उदर भरै॥
रीते भरै, भरे पुनि ढारै चाहै फेरि मरै।
कबहुंक तृण बूड़ै पानी में कबहूं शिला तरै॥
बांगर ते सागर करि राखै चहुँ दिसि नीर भरै
पाहन बीच कमल विगसावै, जल में अगिनि जरै॥
राजा रंक, रंक ते राजा, लै शिर छत्र धरै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेकु ढरै॥

११

आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित अहौं पीढिन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हें विरद विनु करिहौं।
कत अपनी परतीत नसावत मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं ले उठिहै जब हँसि देहौ बीरा॥

१२

प्रभु हौं सब पतितन को टीको।
और पतित सब दिवस चारि के हौं तो जन्मत ही को॥
बधिक अजामिल गणिका तारी और पूतना ही को।
मोहिं छांड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जी को॥
कोउ न समरथु अघ करिवे को खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज सूर पतितनि में हमहूँ ते को नीको॥

१३

अब मैं नाच्यों बहुत, गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह को नूपुर बाजत, निंदा शब्द रिसाल।
भरम भयो मन भयो पखावज, चलत कुसंगत चाल॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नंदलाल॥

१४

मेरो मन अनत कहां सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै।
कमलनैन को छांड़ि महातम और देव को ध्यावै ?
परमगंग को छांड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ?
जिन मधुकर अंबुजरस चाख्यो क्यों करील फल खावै ?
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ?

१५

भावी काहू सों न टरै।
कहं वह राहु कहां वह रवि शशि आनि संयोग परै॥
मुनि वसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी रचि पचि लग्न धरै।
तात मरन, सिय हरन, राम बन, वपु धरि विपति भरै॥
रावण जीति कोटि तैंतीसो त्रिभुवन राज्य करै।
मृत्यु बांधि कूपै में राखे भावीवश सिगरै॥

अर्जुन के हरि हितू सारथी सोऊ वन निकरै ।
द्रुपदसुता के राजसभा दुःशासन चीर हरै ॥
हरिश्चन्द्र सों को जग दाता सो घर नीच भरै ।
जो गृह छांड़ि देश बहु धावै तउ वह संग फिरै ॥
भावी के बस तीनि लोक है सुर नर देह धरै ।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है को करि सोच मरै ॥

१६

जोपै हरिहि न शस्त्र गहाऊं ।
तौ लाजौं गंगा जननी को, संतनुसुत न कहाऊं ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं कपिध्वज सहित दुलाऊं ।
इती न करौं शपथ मोहिं हरि की क्षत्रिय गतिहि न पाऊं ।
पांडवदल सम्मुख ह्वै धाऊं सरिता रुधिर बहाऊं ।
सूरदास रणभूमि विजय बिन जियत न पीठि दिखाऊं ॥

१७

वा पटपीत की फहरानि ।
कर धरि चक्र चरण की धावनि नहिं बिसरति वह बानि ॥
रथ ते उतरि अवनि आतुर ह्वै कच रज की लपटानि ।
मानो सिंह शैल ते निकस्यौ महामत्त गज जानि ॥
जिन गुपाल मेरो प्रण राख्यो मेटि वेद की कानि ।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भए हैं आनि ॥

१८

भगति कब करिहौ जनम सिरानो ।
बालापन में खेलत खोयो तरुनाई गरबानो ॥

बहुत प्रपंच करै माया को तऊ न पेट अघानो ।
जतन जतन करि माया जोरै लै गये रंक न रानो ॥
सुत वित बनिता मोह लगायो झूठै भरम भुलानो ।
लोभ मोह मे चेत्यो नाहीं सुपने ज्यों डहकानो ॥
वृद्ध भये कफ कंठ निरोध्यो सिर धुनि धुनि पछितानो ।
सूरदास भगवंत भजन विनु यम के हाथ विकानो ॥

१६

भजन बिनु जीवन जैसे प्रेत ।
मलिन मंदमति डोलत घर घर उदर भरन के हेत ॥
मुख कटु वचन, नित्त प्रति निंदा सगुन सुयश सुख लेत ।
कबहूं पाप करै पावत धन, गांठि धूत तहं देत ॥
गुरु ब्राह्मण संतनजन सज्जन जात न कबहुं निकेत ।
सेवा नहिं भगवंत चरण की भवन नील को खेत ॥
कथा नहीं गुणगीत सुयश हरि साधत देव अचेत ।
ताकी कहा कहौं सुनि सूरज बूड़त कुटुंब समेत ॥

२०

जननी हौं अनुचर रघुपति को ।
मति माता करि क्रोध सरापैं नहिं दानव, धिग मति को ।
आज्ञा होय देउं कर मुंदरी कहौं संदेसो पति को ॥
मति हिय बिलख करो सिय रघुवर बधिहैं कुल दैयत को ।
कहौ तु लंक उखारि डारि देउं जहां पिता संपति को ॥
कहौ तु मारि संहारि निसाचर रावण करौं अगति को ।
सागर तीर भीर बनचर की देखि कटक रघुपति को ।
लै मिलवैं हौं अबै सूर प्रभु राम रोष उर अति को ॥

२१

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराय मल्हावै जोइ सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहें न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सों आवै तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहूं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहूं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि कर करि सैन बतावै ॥
यहि अंतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभामिनि पावै ॥

२२

कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि अपने रंग खेलत ॥
शिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, पट बाढ्यो सागर जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानिकै दिगपति दिग दन्तौ न सकेलत ॥
मुनि मन भीत भए कंपित शेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन व्रजवासिन बात न जानि समुझे सूर शकट पगु ठेलत ॥

२३

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय करि पानि गहावति डगमगाय धारै हरि पैया ॥
कबहुंक सुन्दर बदन विलोकति उर आनंद भरि लेति बलैया।
कबहुंक बलि की टेरि बुलावति इहि आंगन खेलौ दोउ भैया ॥
कबहुंक कुल देवता मनावति चिरजीवो मेरो बाल कन्हैया।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नंदरैया ॥

२४

गोपालराय दधि मांगत औ रौटी ।
माखन सहित देहि मेरि जननी सुपक सुमंगल मोटी ॥
कतहौ आरि करत मेरे मोहन कत तुम आंगन लोटी ।
जौ मांगहु सो देहुं मनोहर यहै बात तेरी खोटी ॥
प्रातकाल उठि देहुं कलेऊ बदन चुपरि औ चोटी ।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुट लिये छोटी ॥

२५

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटि ।
किनी बार मोहिं दूध पिअत भई यह अजहूं है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वै है लांबी मोटी ।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भ्वै लोटी ॥
काचो दूध पिआवत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
सूर श्याम चिरजीवौं दोऊ हरि हलधर की जोटी ॥

२६

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
पिता नंद को बाबा भाषत अरु हलधर को भैया ॥
ऊंचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा लै लै नाम कन्हैया ।
दूरि कहूं जनि जाहु लला रे! मारैगी काहू की गैया ॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बधैया ।
मनि खंभत प्रतिबिंब लखत नवनीत कुंवर हरि पैया ॥
नंद जसोदाजी के उरतें इह छवि अनत न जैया ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को चरनन की बलि गैया ॥

२७

लेहौं री मा चंद चहौंगी।
कहा करौं जलपुट भीतर को बाहर याहि गहौंगो ॥
यह तौ झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो।
वह तो निपट निकट ही देखत बरज्यो हौं न रहौंगो ॥
तुमरो प्रेम प्रगट मैं जान्यो बौराए न बहौंगो।
सूरश्याम कह कर गहि ल्याऊं ससि तनु दाप दहौंगो ॥

२८

प्रात भयो जागौ गोपाल।
नवल नवल सुंदरी आयके बोलत तुमहिं सबै ब्रजबाल ॥
प्रगटो भानु, मंद उडुपति भयो, फूले सुंदर तरुन तमाल।
दरसन को ठाड़ी ब्रज बनिता ल्याईं कुसुम गुंज बनमाल ॥
मुखहि धोइ सुंदर बलिहारी करहु कलेऊ मोहनलाल।
सूरदास प्रभु आनंद के निधि अंबुज लोचन नयन विशाल ॥

२९

खेलत अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया ॥
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकि तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नंद सों जसुमति को कहै मैया।
ऐसे ही कहि मोंहि खिझावत तब उठि चलों खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हंसत हंसत उर लैया।
सूर नंद बलराम हिं धिरयो सुनि मन हरष कन्हैया ॥

३०

मैया री मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान मिठाई मोहिं नहिं रुचि आवै॥
ब्रज जुवती इक पाछे ठाढ़ी सुनति श्याम की बात।
मन मन कहति कबहुं मेरे घर देखौं माखन खात॥
बैठे जाय मथनियां के ढिग मैं तब रही छिपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालि मनहिं की जानी॥

३१

सखा सहित गये माखन चोरी।
देख्यो श्याम गवाच्छ पंथ ह्वै गोपी एक मथत दधि भोरी॥
हेम मथानी धरी माट तें माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी मांगन हरि पाई तब घात॥
पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खायो।
छूंछी छांड़ि मटुकिया दधि की हंसि तब बाहिर आयो॥
आय गई कर लिये मटुकिया घर ते निकरे ग्वाल।
माखन कर, दधि मुख लपटानो देखि रही नंदलाल॥
कह आये ब्रजबालक संग लै माखन मुख लपटानो।
खेलत तें उठि भजे सखा घर आइ ससंक छुपानो।
भुज गहि लियो कान्ह इक बालक निकरे ब्रज की खोरि।
सूरदास ठगि रहि ग्वालिनी मनु हरि लियो अंजोरि॥

३२

ब्रज घर घर प्रगटी यह बात।
दधि माखन चोरी कै लै हरि ग्वाल सखा संग खात।
ब्रजवनिता यह सुनि मन हरषीं सदन हमारे आवें।

माखन खात अचानक पावैं भुज भरि उरहि लगावैं ॥
मन ही मन अभिलाष करत सब हृदय करत यह ध्यान ।
सूरदास प्रभु को घर तें लै देहौं माखन खान ॥

३३

तेरे लाल मेरो माखन खायो ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनो ढूंढ़ि ढंढोरि आप ही आयो ॥
खोलि किंवार सून मन्दिर में दूध दही सब सखन खवायो ।
सीके काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु लै ढरकायो ॥
दिन प्रति हानि होत गोरस की यह ढोटा कौने ढंग लायो ।
सूरदास कहती व्रजनारी पूत अनोखो जसुमति जायो ॥

३४

जसोदा ऊखल बांधे स्याम ।
मनमोहन बाहिर ही छांड़े आपु गई गृहकाम ॥
दहयो मथति मुख ते कछु बकुरति गारी दै दै नाम ।
घर घर डोलत माखन चोरत षटरस मेरे धाम ॥

३५

जसुमति केहि यह सीख दई ।
सुतहिं बांधि तू मथति मथानी ऐसी निठुर भई ॥
हरै बोल जुवतिन को लीनों सुन सब तरुनि नई ।
लरिकहि त्रास दिखावत रहिये कत मुरझाय गई ॥
मेरे प्रान जीवनधन माधव बांधे बेर भई ।
सूरश्याम को त्रास दिखावत तुम कह कहत गई ॥

३६

चरावत वृन्दावन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए खेलत हैं करि चेनु॥
कोउ गावत कोउ मुरलि बजावत कोउ विषान कोउ वेनु।
कोउ निर्तत कोउ उघटि तार दै जुरि व्रजबालक सेनु॥
त्रिबिधि पवन जहं बहत दिवस निसि सुभग कुंज घन एनु।
सूरश्याम निज धाम बिसारत आवत यह सुख लेनु॥

३७

मेरे नैन निरखि सुख पावत।
संध्या समै गोप गोधन संग बन तें बने लाल व्रज आवत॥
बलि बलि जाउं मुखारविंद की मन्द मन्द सुन्दर गति धावत।
नटवर रूप अनूप छबीलो सब ही के मन भावत॥
गुंजा उर बनमाल मुकुट सिर बेनु रसाल बजावत।
कोटि किरन मनि मुख परकासत, उडुपति कोटि लजावत॥
चन्दन खौरि काछती को छबि सबके मनहिं चुरावत।
सूरश्याम नागर नारिन को बासर विरह बसावत॥

३८

आजु बने बन तें व्रज आवत।
नाना रंग सुमन की माला नंदनंदन उर पर छबि पावत॥
संग गोप गोधन संग लीने नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत, कोउ ताल बजावत।
रांभत गाइ वच्छ हित सुधि करि प्रेम उमंगि थन दूध चुवावत।
जसुमति बोलि उठी हरषत ह्वै "कान्हों धेनु चराये आवत"॥

इतनी कहत आय गए मोहन जननी दौरि हिये लै लावत।
सूरश्याम के कृत जसुमति सों ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत॥

३६

मैया बहुत बरो बलदाऊ।
कहन लगे बन बड़ो तमासो सब मोंड़ा मिलि आऊ॥
मोहूँ को चुचकारि गए लै जहां सघन बन झाऊ।
भागि चले कहि गयो वहां तें काटि खाइ है हाऊ॥
हौ हूं डरप्यो कांपि पुकारयौ कोउ नहिं धीर धराऊ।
थरसल गयो न भागि सकौं वै भागे जात अगाऊ॥
मोसों कहत मोल को लीनो आपु कहावत साऊ।
सूरदास बल बड़े चबाई तैसे मिले सखाऊ॥

४०

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहं ब्रज खोरी॥
काहे को हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पोरी।
स्रवनन सुनति रहति नंदढोटा करत रहत माखन दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लै हैं खेलन चलौ संग मिल जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी॥

४१

खेलन के मिस कुंवरि राधिका नंदमहर के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि बोली "घर हौ कुंवर कन्हाई हो"॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई हो।
माता सों कछु करत कलह हरि सो डारयो बिसराई हो॥

'मैया री तू इनको चीन्हति' बारंबार बताई हो।
'जमुना तीर काल्हि मैं भूल्यौं बांह पकरि लै आई हो॥
आवति यहां तोहिं सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई हो'।
सूर स्याम ऐसे गुन आगर नागरि बहुत रिझाई हो॥

४२

जसुमति राधा कुंवरि संवारति॥
बड़े बार सीवंत सीस के प्रेम सहित लै लै निरवारित॥
मांग पारि बेनीहि संवारति गूंथी सुन्दर भांति।
गोरे भाल बिंद बदन मनु इंदु प्रात रवि कांति॥
सारी चीर नई फरिया लै अपने हाथ बनाई।
अंचल सों मुख पोंछि अंग सब आपुहि लै पहिराई॥
तिल चांव।ी बतासे मेवा दियो कुंवरि के गोद।
सूरश्याम राधा तन चितवत जसुमति मन मन मोद॥

४३

कन्हैया निरतत फन पर ऐसे।
मनो गिरिवर पर बादल देखत मोर अनंदित जैसे॥
डोलत मुकुट सीस पर हरि के कुंडल मंडित गंड।
पीत बसन दामिनि तनु घन पर ता पर सुर कोदंड॥
उरगनारि आगे सब ठाढ़ीं मुख मुख सुस्तुति गावैं।
सर स्याम अपराध छमहू अब हम मांग्यो पति पावैं॥

४४

अबकै राखि लेउ गोपाल।
दसहुँ दिसा ते दुसह दवागिनि उपजी है यहि काल॥

पटकत बांस, कास कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल॥
धूम धूंधि बाढ़ी धर अंबर, चमकत बिच बिच ज्वाल।
हरिन, वराह, मोर, चातक, पिक, जरत जीव बेहाल॥
जानि जिय डरहु नयन मूंदहु सबै, हंसि बोले गोपाल।
सूर अनल सब वदन समानी अभय करे व्रजबाल॥

४५

सखी री! सुंदरता को रंग।
छिन छिन बांह परति छबि औरै कमलनयन के अंग॥
परिमित करि राख्यो चाहति है तुम लगि डोलत संग।
चलत निमेष बिसेष जानियत भूलि भई मति भंग॥
स्याम सुभग के ऊपर वारौं, आली! कोटि अनंग।
सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई गति पंग॥

४६

हरि मुख निरखत नैन भुलाने।
ये मधुकर रुचि पंकज लोभी ताहि तें न उड़ाने॥
कुंडल मकर कपोलन के ढिग जनु रवि रैनि बिहाने।
भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने॥
अरुन अधर, द्विज कोटि वज्रदुति ससिगन रूप समाने।
कुंचित अलक सिलीमुख मानो लै मकरंद निदाने॥
तिलक ललाट कंठ मुकुतावलि भूषणमय मनि साने।
सूरदास स्वामी अंग नागर ते गुन जात न जाने॥

४७

नैन न मेरे हाथ रहे।
देखत दरस स्यामसुंदर को जल की ढरनि बहे॥
वह नीचे को धावत आतुर ऐसेहि नैन भये।
वह तो जाइ समात उदधि में, ये प्रति अंग रमे॥
वह अगाध कहुँ वार न पार न, येउ सोभा नहिं पार।
लोचन मिले त्रिवेणी ह्वै कै सूर समुद्र अपार॥

४८

नैन भए वेहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहिं पावैं फिरि आवत नहिं लाग॥
ऐसी दशा भई री इनकी अब लागे पछितान।
मो बरजत बरजत उठि धाए नहिं पायो अनुमान॥
वह समुद्र ओछे बासन ये, धरे कहा सुखरासि।
सुनहु सूर ये चतुर कहावत, वह छवि महा प्रकासि॥

४९

यशोदा बार बार यों भाषै।
है कोई ब्रज हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हनन को काल रूप ह्वै आयौ॥
बरु ये गोधन हरो कंस सब मोहि बंदी ले मेलौ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अँखियन आगे खेलौ॥
बासर बदन बिलोकत जीवों निसि निज अंक में लाओं।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवश तो हँसि काहि बुलाओं॥

कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर बदन कुम्हिलानी।
"सूर" कहा लगि प्रकट जनाऊँ दुखित नन्दजू की रानी॥

५०

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहत कमल नैन को निसिदिन रहत उदासी॥
आये ऊधो फिरि गये आंगन डारि गये गर फांसी।
केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हांसी।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट त्यों कासी॥

५१

ऊधो मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
बृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छांहीं॥
प्रात समय माता यसुमति अस नन्द देख सुख पावत।
माखन रोटी दहयो सजायो अति हित साथ खवावत॥
गोपी ग्वाल वाल संग खेलत सब दिन हंसत खिरात।
"सूरदास" धनि धनि व्रजवासी जिन सों हंसत व्रजनाथ॥

५२

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहां तें सजनी सुनियत दूरि सिधारे॥
वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं नियारे।
हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे॥
मधुबन बसत आस दरसन की जोई नैन मग हारे।
"सूर" श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे॥

५३

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो ॥
यह माया भ्रम जाल कहावै "सूरदास" सगरो।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो ॥

नंददास

रूप मंजरी से

प्रथमहिं प्रनऊं प्रेममय परम जोति जो आहि।
रूप उपावन ? रूप निधि, नित्य कहत कवि ताहि।
परम प्रेम पद्धति इक आहीं, 'नंद' जथामति बरनत ताहीं।
जाके सुनत मन सरसै, सरस होइ रस बालुहि परसै।
रस परसे बिन तत्व न जानै, अलि बिन कमलहि को पहिचानै।
पुनि प्रनऊं परमातम जोई, घट घट बिघट पूरि रह्यौ सोई।
ज्यों जलभरि बहुभाजन माहीं, इंदु एक सबही में छाहीं।
जु कछु मानसर ससि की झांईं, सो न छुद्र छिल्लर छवि पाईं।
तरनि किरन सब पाहन परसै, फटिक मांझ निज तेजहि दरसै।
स्वाति बूंद अहि मुख बिख होई, कदली दल कपूर होइ सोई।
जुवन रूप संग सोभा पावें, सो कुरूप ढिग बदन दुरावै।
एकै पट अनेक रंग गहै, सुरंग रंग सँग अति छवि लहै।
पुनि जस पवन एक रस आही, वस्तु के मिलत भेद भयौ ताही।
रविकर परसि अग्नि जिहिं होई, सो दरपन जग बिरलौ कोई।
जगमग जगमग करहि नग, जौ जराइ सँग होइ।
कांच किरन कंचन खचे, भलौ न कहियै कोइ।

भ्रमर गीत से

वे तुम तैं नहिं दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ॥

लौह दारू पाषान मैं जल-थल माहिं अकास ।
सचर अचर बरतत सबै, जोति ब्रह्म परकास ॥
सुनौ ब्रजवासिनी ॥

कौन ब्रह्म की जोति ग्यान का सौं कहौ ऊधौ ?
हमरे सुन्दर श्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ ॥
नैन, बैन, श्रुति, नासिका, मोहन-रूप दिखाइ ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी, प्रेम ठगौरी लाइ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

यह सब सगुन उपाधि, रूप निर्गुण है उन कौ ।
निरविकार निर्लेप, लगत नहिं तीनौं गुन कौ ॥
हाथ न पाँउ, न नासिका, नैन, बैन, नहिं कान ।
अच्युत-ज्योति प्रकास है, सकल विस्व कौ प्रान ॥
सुनौ ब्रजवासिनी ॥

जौ मुख नाहिं न हुतो, कहौ किन माखन खायौ ?
पाइन बिन गो संग, कहौ को बन बन धायौ ॥
आँखिन में अंजन दियौ, गोवर्धन लियौ हाथ ।
नंद जसोदा पूत है, कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

जाहि कहौ तुम कान्ह, ताहि कोउ पिता न माता ।
अखिल अंड ब्रह्मंड, विस्व उन्हीं तैं जाता ॥
लीला-गुन अवतारि कै धरि आये तन स्याम ।
जाग-जुगति ही पाइयै, परब्रह्म-पुर धाम ॥
सुनौ ब्रजवासिनो ॥

ताहि बतावहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ ।
प्रेम सहित हम पास, नंद-नंदन-गुन गावौ ।।
नैन, बैन, मन, प्रान मैं मोहन-गुन भरपूरि ।
प्रेम पियूषै छाँड़ि कै, कौन समेटै धूरि ।।
सखा सुनि स्याम के ।।

धूरि बुरी जौ होइ, ईस क्यों सीस चढ़ावै ।
धूरि-क्षेत्र में आइ, कर्म करि हरि पद पावै ।।
धूरिहि तैं यह तन भयौ, धूरिहि तैं ब्रह्मंड ।
लोक चतुर्दस धूरि तैं सप्त दीप नव खंड ।।
सुनौ ब्रजवासिनी ।।

कर्म धर्म कौ बात, कर्म अधिकारी जानैं ।
कर्म-धूरि कौ आनि, प्रेम अमृत मैं सानैं ।।
तबहीं लौं सब कर्म है, जब लौं हरि उर नाहिं ।
कर्म बंध सब विश्व के, जीव बिमुख ह्वै जाहिं ।।
सखा सुनि स्याम के ।।

कर्महिं निंदौ कहा, कर्म तैं सद्‌गति होई ।
कर्म रूप तैं बली, नाहिं त्रिभुवन मैं कोई ।।
कर्महि तैं उत्पत्ति है, कर्महि तैं नास ।
कर्म किये तैं मुक्ति है परब्रह्म-पुर वास ।।
सुनौ ब्रजवासिनी ।।

कर्म पाप अरु पुन्य, लौह सोने की बेरी ।
पाइन बंधन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी ।।

ऊँच कर्म तैं स्वर्ग है नीच कर्म तैं भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे विषय-वासना रोग॥
सखा सुनि स्याम के॥

कर्म बुरे जौ हौंहि, जोग काहे कोउ धारै।
पद्मासन सब द्वार रोकि, इन्द्रिन कौं मारै॥
ब्रह्म-अग्नि जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि समाधि लगाइ।
लीन होइ सायुज्य मैं जोतिहि जोति समाइ॥
सुनौ ब्रजवासिनी॥

जोगी जोतिहि भजैं, भक्त निज रूपहि जानैं।
प्रेम पियूषै प्रगट, स्याम सुन्दर उर आनैं॥
निर्गुन गुन जो पाइयै, लोग कहैं यह नाहिं।
घर आयौ नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा सुनि स्याम के॥

———

मीराबाई

१

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरण।
जिण चरण ब्रह्मांड मेटयो नखसिखां सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गौतम घरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो गोपलीला करण।
जिण चरण गोवरधन धार्यो, इंद्र का ग्रब हरण।
दासी मीराँ लाल गिरधर, आगम तारण तरण॥

२

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।

३

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
मीराँ कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती विसार।

४

आली रे मेरे नैणाँ बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
भव की ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूर जड़ी।
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।

५

श्री गिरधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमीजन कूँ जाँचूँगी।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिव के पलंग जा पौढूँगी, मीराँ हरि रंग राचूँगी।

६

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जा के सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
छांडि दई कुल ही कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई।
भगति देख राजी हुई, जगति देख रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोहीं।

७

मैं तो साँवरे के रंग राची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोकलाज तजि नाची।

गई कुमति लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुन निसदिन, काल व्याल सूँ बाँची॥
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
मीराँ श्री गिरधरलाल सूँ, भगति रसीली जाँची॥

८

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तबही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संगि खेलूँ, ज्यों ज्यों वाहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी, उण बिण पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावै तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥

९

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियोरी बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुँहघो, लियोरी तराजू तोल।
जाही कूँ सब लोग जाणत है, लियोरी आँखी खोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल।

१०

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की, आपहि होगई दासी, रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे।

विष का प्याला राणा ने भेजा, पीवत मीरा हाँसी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।

११

हरि तुम हरो जन की भीर।

द्रोपता की लाज राखी, तुरत बाढ्यौ चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्हौं, धर्यौ नाहिन धीर।
बूड़तो गजराज राख्यौ, कियौ बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर।

१२

हेरी मैं तो दरद दिवानी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ।
घाइल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ।
जौहरी की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपरि सेज हमारी, सोवण किस विध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी, जब वैद साँवलिया होइ।

१३

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी।
काली पीली घटा ऊभरी बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी पाणी हुई हुई भोम हरी।
जाका पिय परदेस बसत है, भीजूँ बहार खरी।
मीराँ के प्रभु हरी अविनासी, कीज्यो प्रीति खरी।

१४

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि अंगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह थी, वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो।

१५

म्हारो जनम मरन को साथी थाँने नहिं बिसरू दिनराती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अँखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो झूँठा कुलरा न्याती।
दोउ कर जोड़याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरायो, ज्यूँ मद माती हाथी।
सतगुरु हाथ धरयो सिर ऊपर अँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती।

१६

मोहिं लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछु वै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूख गयो है, फिकर नहीं मोहिं तरनन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की।

१७

कोइ कहियौ रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, वाण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैण कह्यो नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा कहूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़जावन की।
मीरा कहै प्रभु कबरे मिलोगे, चेरी भइ हूं तेरे दाँवन की।

१८

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढ़े चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी, कब आवै महाराज।
दादर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमँग्यो इन्द्र चहुं दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज।
मीरा के प्रभु हरी अविनासी बेग मिलो महाराज।

१९

मने चाकर राखो जी, मने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसण पासूं।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहैं, गल वैजन्ती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे नित बन्न बनाऊँ, विच विच राखूं क्यारी।

सांवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुम्भी सारी।
जोगी आया जोग करण कूं तप करणे सन्यासी।
हरी भजन कूं साधू आया, वृन्दावन के बासी।
मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण दै हैं, प्रेम नदी के तीरा।

२०

मैंने राम रतन धन पायौ।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायो।
जनम जनम की पूंजी पाई जग में सबै खोवायौ।
खरचैं नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयौ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जस गायौ।

————

रसखान

दोहे

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय ।
जो जन जानै प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय ॥१॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।
जो आवत यहि ढिग बहुरि, जात नाहिं रसखान ॥२॥
प्रेम वारुनी छानिके, बरुन भये जलधीस ।
प्रेमहि ते विषपान करि, पूजे जात गिरीस ॥३॥
दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।
इनते परे बखानिये शुद्ध प्रेम रसखान ॥४॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह ।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥५॥
इक अंगी विनु कारनहिं, इक रस सदा समान ।
गनै प्रियहिं सरवस्व जो सोई प्रेम प्रधान ॥६॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहिकै, प्रेम बखानो सोय ॥७॥

सवैये

१

मानुष हौं तो वही रसखान
बसौं संग गोकुल गांव के ग्वारन ।

जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वही
कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ॥

२

या लकुटी अरु कामरिया
पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि के
सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ॥
नैनन सों रसखान जबै
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
केतिक हू कलधौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥

३

मोर पंखा सिर ऊपर राखिहौं
गुंज की माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन
गोधन ग्वालन संग फिरौंगी ॥
भाव तो सोई मेरो रसखान
सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ॥
या मुरली मुरलीधर की
अधरा न-धरी अधरा न धरौंगी ॥

४

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहै पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं॥

कवित्त

१

कहा रसखान सुख सम्पति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये तन छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच तल,
कहा जीति लाये राजसिन्धु आरपार को।
जप बार बार तप संयम बयार-व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित
चाह्यो न निहार जो पै नन्द के कुमार को।

२

आई खेलि होरी ब्रज गोरी वा किशोरी संग,
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइगो।
कुंकुम की मार वापै रंगनि उछार उड़ै,
बुक्का औ गुलाल लाल लाल तरसाइगो।
छोड़े पिचकारिन धमारिन वियोग छोड़े,
तोड़े हियहार धारि रंग बरसाइगो।
रसिक सलोनो रिझवार रसखान आज,
फागुन के औगुन अनेक दरसाइगो॥

नरोत्तमदास

सुदामा-चरित

१

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में वैजयन्ती माल,
सङ्ख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं।
कहत नरोत्तम संदीपन गुरु के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥

२

कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मठौती।
सीत वितीतत जौ सिसियात,
तौ हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि सों तौ मैं,
काहे को द्वारिका पेलि पठौती॥
या घर तें कबहूँ न गयो पिय,
टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

३

तैं तौ कही नीकी सुनि बात हित ही की,
रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए।
मित्र के मिले तें चित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जो जेइए तो आपहूँ जेंवाइए॥
वै हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाइ कहा सकुचाइए।
सुख दुख करि दिन काटे ही बनैंगे भूलि—
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥

४

सीस पगा न झगा तन में प्रभु!
जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सि लुटी दुपटी,
अरु पायँ उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़े द्विज दुर्बल देखि,
रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीन दयाल को धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा॥

५

ऐसे बेहाल बिवाइन सों,
पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।
हाय महा दुख पायो सखा!
तुम आये इते न कितै दिन खोए॥
देखि सुदामा की दीन दसा,

करुना करि कै करुनानिधि रोए।
पानी परात कौ हाथ छुयौ नहिं,
नैनन के जल सों पग धोए॥

६

कै वह टूटी सी छानी हुती,
कहँ कँचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुती,
कहँ ले गजराजहु ठाढ़ महावत॥
भूमि कठोर पै रात कटै,
कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहिं कोदों सवाँ,
प्रभु के परताप तें दाख न भावत॥

———

गंग

कवित्त

१

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे वेसपती धुनि सुनत निसान की।
गङ्ग कहै तिनहूँ की रानी राजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधी भूली खानपान की।
तेऊ मिलि करिन हरिन मृग बानरन,
तिनहुँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी।

२

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी।
कहै कवि गङ्ग तहां भारी सूर वीरन के,
उमड़ि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी॥
मच्यौ घमासान तहां तोप तीर बान चलै,
मंडि बलवान किरपान कोपि गहकी।
तुण्ड काटि मुण्ड काटि जोसन जिरह काटि
नीमा जामा जीन काटि जिमीं आनि ठहकी॥

३

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन तें एक मनो सुखमा जरद की।
कहैं कवि गङ्ग तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गजघटा घनघटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियां उमड़ि चलीं,
रही न निसान कहूँ मटि में गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि बरद की।

४

फूट गये हीराकी बिकानी कनी हाट हाट,
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो।
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो बिभीषन है,
रावन समेत बंस आसमान को गयो।
कहैं कवि गंग दुरजोधन से छत्र धारी,
तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो।
फूटें तें नरद उठि जात बाजी चौसर की,
आपस में फूटें कहु कौन को भलो भयो।

५

देखत के बृच्छन में दीरघ सुभायमान,
कीर चल्यो चाखिबे को प्रेम जिय जग्यो है।
लाल फल देखि कै जटान मँड़रान लागे,
देखत बटोही बहुतेरे डग मग्यो है।

गंग कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि,
    सबनि निराश ह्वै कै निज गृह भग्यौ है।
ऐसो फलहीन वृच्छ बसुधा में भयो यारो,
    सेमर विसासी बहुतेरन को ठग्यो है।

छप्पय

तिमिर लंग लई मोल, चसी बब्बर के हलक।
रही हुमायूं साग, गई अकबर के दलके।
जहांगीर जस लियो, पीठि को भार छुड़ायो।
शाहजहां करि न्याय ताहि को मांड चटायो।
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगि फिरत बन स्यार डर।
औरंगजेब करिनी सोई, लै दीन्हीं कवि गंगधर॥

———

केशवदास

रामचन्द्रिका से

रावण अंगद संवाद

दोहा

अंगद कूद गये, जहां आसन गत लंकेश।
मनु मधुकर कर हाट पर, शोभित श्यामल वेष।

(नाराच छंद)

प्रतीहार—पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडिरे।
कुवेर बेर कै कही नयत्त भीर मंडरे।
दिनेश जाइ दूरि वैठु नारदादि संगहीं।
न वोलु चंद मंद वुद्धि इन्द्र की सभा नहीं।

(चित्रपदा छंद)

अंगद यों सुनि वानी। चित्त महारिस आनी।
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ वैसे।

(चंचरी छंद)

रावण—कौन हो पठये सो कौने ह्यां तुम्हें वह काम है।
अंगद—जाति वानर लंक नायक दूत अंगद नाम है।
रावण और अंगद—कौन है वह वांधिकै देह पूछि सवै दही।
लंक जारि संहारि अत्त गयो सो वात वृथा कही।
कौन के सुत वालि के वह कौन वालि न जानिये।
कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात वखानिये।

है कहां वह वीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो रघुनाथ वान विमान बैठि सिधाइयो।
लंकनायक को विभीषण देव दूषण को दहै।
मोहिं जीवत होहिं क्यों जग तोहि जीवत को कहै।
मोहिं को जग मारिहै दुर्बुद्धि तेरिय जानिये।
कौन वात पठाइयो कहि वीर वेगि बखानिये॥

सवैया

अंगद—

श्री रघुनाथ को वानर केशव आयो हो एकु न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारी त्रिकूट को देह विहार धयो जू।
सीय निहारि संहारि कै राक्षस शोक अशोक बनीहि दयो जू।
अक्ष कुमारहि मारिकै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू।

(गंगोदक छन्द)

राम राजान के राज आये इहां।
धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै
मित्र मन्त्री जिते पूंछि देखौ सबै।
राखिजै जाति को भांति को वंश को
साधि जै लोक में लोक पर्लोक को।
अनिकै पाँ परो देसलै कोश लै
आसुहीं ईश सीता चलैं ओक को।

रावण—लोक लोकेश स्यों शोचि ब्रह्मा रचे
अपनी अपनी सींव सो सो रहै।
चारि वाहैं धरे विष्णु रक्षा करैं

बात सांची यहै वेद वाणी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरैं।
ताहि हौं छोड़ि कै पायँ काके परौं
आजु संसार तो पायँ मेरे परैं।

(मदिरा छंद)

राम को काम कहा? रिपुजीतहिं
कौन कबै रिपुजीत्यो कहाँ?
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन
गर्व हरो, द्विज दीन महा॥
दीन सो क्यौं? छित छत्र हत्यो
बिन प्राणनि हैहय राज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्यो जिन
खेलत ही तुम्हैं बांधि लियो।

(विजय छन्द)

अंगद—

सिंधु तर्यो उनको बनरा तुमपै धनु रेख गइ न तरी।
बांध्योइ बांधत सो न बँध्यो उन वारिधि बांधि कै बाटकरी॥
अजहूँ रघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं दशकंठ न जानिपरी।
तेलनि तूलनि पूंछि जरी न जरी जरी लंक जराइ जरी॥

रावण—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपि पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै अपनो पदु लै पितु जा लगि मारे॥

तोसे सपूत हि पाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हनै बप मारे॥

(दोहा)

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्यो, लोय कहैं तजि त्रास॥

अंगद—इतको बिलगु न मानिये, सुनि रावण पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु॥

(द्रुत विलंबित)

रावण—

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनक घातक बात वृथा कहौ।
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल बानर राज तुम्हैं करौं॥

(निशिपालिका छन्द)

अंगद—शत्रु सम मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
भूत विधि नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाखहू।
राखि भुज शीश तव और कहँ राखहू॥

(भुजंग प्रयात छन्द)

रावण—महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जो वै॥
क्षमानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥
सका मेघमाला शिखो पाककारी।
करै कोतवाली महादंडधारी॥

पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥

(विजय छन्द)

अंगद—पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि
पालकि हू चढ़ि मोह मड़्यो रे।
चोक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो
गजवाजि चढ़्यो गढ़ गर्व चढ़्यो रे।
व्योम विमान चढ़्यो ई रह्यो
कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहीं रह्यो चढ़ि चित्त सों।
चाहत मूढ़ चिता हू चढ़्यो रे॥

(भुजंग प्रयात छन्द)

रावण—निकर्‌यो जो भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको।
लिये बानराली कहौं बात तो सों।
सो कैसे लरै राम संग्राम मो सों॥

(विजय छन्द)

अंगद—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊँ न ठाऊँ की ठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहीं संग रैहै॥
केशव काम को राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित अन्तर अन्तक लोक अकेलोई जैहै॥

(भुजंग प्रयात छन्द)

रावण—डरै गाय विप्रै अनाथै जो भजै।
पर द्रव्य छोंड़ै परस्त्री हि लाजै॥
पर द्रोह जासों न हो वै रती को।
सु कैसे लरै वेष कीन्हें यती को॥

(दोहा)

गेंद करेउँ मैं खेल को, हरगिर केशोदास।
शीश चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥

(दंडक)

अंगद—जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत शीश काटत घनेरे घाघ,
मगर के खेले कहा भट पद पावहीं।
जीत्यो जो सुरेश रण शाप ऋषि नारि ही को,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं।
गहौ राम पायँ सुख पाइ करैं तपो तप,
सीता जू को देहु देव दूंदभी बजावहीं।

(वंशस्थ छन्द)

रावण—तभी जर्पा विप्रनि छिप्रही हरौं।
अदेव द्वेपी सब देव संहरौं॥
सिया न दैहों यह नेम जो धरौं।
अमानुपी भूमि, अवानरी करौं॥

[विजय छंद]

अंगद—

पाहन ते पतिनी करि पावन टूक कियो हर को धनु कोरे।
छत्र विहीन करी क्षण में क्षिति गर्व हर्यो तिनके बल कोरे॥
पर्वत पुंज पुरैनि के पात समात तरे अजहूँ घर कौरे।
होई नरायण हूँ पै नये गुण कौन इहाँ नर बानर कोरे॥

[चंचरी छंद]

रावण—देहिं अंवद रज तो कहँ मारि बानर राज को।
बांधि देहिं विभीषणौ अरु फोरि सेतु समाज को॥
पूँछ जारहिं अक्षरिपु की पाइं लागहि रुद्र के
सीय को तब देहूँ रामहिं पार जाइ समुद्र के

अंगद—लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बांधत शोधिकै नल क्षीर छीट बहाइयो॥
ताहि तोहिं समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहां विभीषण बैठि हैं तेहि ते डरौं॥

[दोहा]

अंगद रावण को मुकुट, ले करि उड़्यो सुजान।
मनि चलो यमलोक को, दश शिर को प्रस्थान॥
अंगद लै वा मुकुट को, परे राम के पाइ।
राम विभीषण के शिरसि भूषित कियो बनाइ॥

रसिक प्रिया से

सवैया

चपला कह मोर किरीट लसै मघवा धनुसोय वटावत हैं।
मृदु गावत आवतु बेनु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं॥

उठि देखु भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घने घन वेस धरेजु वने बनते व्रज आवत हैं॥

कवि प्रिया से

कवित्त

जो हौं कहौं रहिये, तो प्रभुता प्रकट हत,
चलन कहौं तो हित हानि नाहि सहनो।
भावै सो करहू तो उदास भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोक लाज वहनो?
केसौ राय की सौ तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जो पै नाहीं आज रहनो।
तैसियै सिखाओ सीख तुम हीं सुजान पिय,
तुमरे चलत मोहिं जैसो कछू कहनो॥

रहीम सतसई

कहि रहीम इक दीपतें, प्रकट सब द्युति होय ।
तनु सनेह कैसे दुरौ, दृग दीपक जरु दोय ॥१॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥२॥

जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर ।
निशिवासर लागो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर ॥३॥

रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मिल गोत ।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥४॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि ।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥५॥

को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात ।
संपति के सब जात हैं, विपति सबहि लै जात ॥६॥

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥७॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि ।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥८॥

तेहि प्रमान चलिवो भलो, जो सब दिन ठहराय ।
उमड़ि चले जल पारतें, जो रहीम बढ़ि जाय ॥९॥

तबहीं लग जीबो भलो, दीबो परे न धीम ।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥१०॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहुँ घट जाय ।
तो रहीम मरबो भलो, दुख सहि जिये बलाय ॥११॥

अमर बेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥१२॥

रहमन अति न कीजिये, गहि रहिये निज कानि ।
सहिजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥१३॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीत न धीम ।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥१४॥

जो रहीम करिबो हुतो, व्रज को यही हवाल ।
तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरवरधर गोपाल ॥१५॥

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि कढि जाहिं ॥१६॥

जै रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषण काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि ॥१७॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायण हूं को भयो, बावन आंगुर गात ॥१८॥

संतत संपति जानिके, सबको सब कुछ देइ ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥१९॥

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं ।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥२०॥

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूर ॥२१॥

बड़े पेट के भरन में, है रहिमन दुख बाढ ।
यातें हाथी हहरि के, दये दांत द्वै बाढ़ि ॥२२॥

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अंखियां निरखि, आंखिन को सुख होत ॥२३॥
जो बड़ेन को लघु कहौं, नहिं रहीम घट जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहै, कछु दुख मानत नाहिं ॥२४॥
शशि, संकोच, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥२५॥
यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, यश, होत होत ही होय ॥२६॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेति दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥२७॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लिपटाय।
पशु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाये खाय ॥२८॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत धूर पर, जब घर लागत आगि ॥२९॥
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥३०॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥३१॥
मान सरोवर ही मिलै, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालक नहिं योग ॥३२॥
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥३३॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति को पौरि।
मूंकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥३४॥

जे रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥३५॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम ॥३६॥
सब कोऊ सबसों करै, राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटकै काम ॥३७॥
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय ॥३८॥
छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यहि लेख।
सहसन को हथ बांधियत, लै दमरी की मेख ॥३९॥
सम्पति भरम गंवाय कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम शशि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं ॥४०॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन को जोर।
ज्यों शशि के संयोग ते, पचवत आग चकोर ॥४१॥
काम कछू आवे नहीं, मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥४२॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥४३॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक, रीझेउ कछु नहिं देत ॥४४॥
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छांह गंभीर।
बागन बिच बिच देखियत, सेहुँड़ कंज करीर ॥४५॥
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥४६॥

रहिमन मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को वस करिबौ कहा, नारायन वस होय ॥४७॥
रहिमन अँसुवा नयन टरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कह देइ ॥४८॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥४६॥
विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निशा, चमकि जात खद्योत ॥५०॥
शीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥५१॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥५२॥
अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जिहि चितवत इक वार ॥५३॥
रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लवार।
जो पति राखन हार है, माखन चाखन हार ॥५४॥

सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान विन।
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिवो भलो ॥

वरवै नायिका भेद

होइ कत आय बदरिया, वरखहिं पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना साथ ॥ १ ॥
ते अब जासि बेइलिया, वरु जरि मूल।

बिन पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल ॥ २ ॥

कासों कहौं संदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहिं फूले, तेहि वन टेसु ॥ ३ ॥
वन घन फूलहिं टेसुआ, बगियन बेलि।
चले बिदेस पियरवा, फगुवा खेलि ॥ ४ ॥
पीतम इक सुमिरिनियां, मुहिं देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करव निवाहु ॥ ५ ॥
लैकर सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छइवे एक छतरिया, बरसत पाथ ॥ ६ ॥
पिय मूरति चितसरिया, चितवत वाल।
चितवत अवध सवेरवा, जपि जपि माल ॥ ७ ॥
टूटि खाट घर टपकत, टटिओ टूटि।
पिय कै बांह उसिसवां, सुख कै लूटि ॥ ८ ॥

— ——

बिहारी

दोहा

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की भांई परै स्याम हरित दुति होइ ॥ १ ॥
अजौं तरचौना ही रह्यौ, श्रुतिसेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यो, बसि मुकुतन कै संग ॥ २ ॥
जम करि मुँह तरहर पर्यो, इहिं धरिहरि चितलाउ।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउं ॥ ३ ॥
तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उरबसी, ह्वै उरबसी समान ॥ ४ ॥
कौन भांति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मौसों आइकै, गीधे गीधहिं तारि ॥ ५ ॥
जगतु जनायौ जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥ ६ ॥
दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईहिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥ ७ ॥
तंत्री नाद, कवित्त रस, सरिस राग रति रंग।
अब बूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥ ८ ॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जवल होइ॥ ६ ॥
कैसे छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे के चाम ॥ १० ॥

जपमाला, छापै तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन कांचै नाचे बृथा, सांचै रांचै रामु॥ ११॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥१२॥

कनक कनक तैं सौ गुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएं बौराइ जग इहिं, पाये बौराइ॥ १३॥

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग पगपग होतु प्रयागु॥१४॥

संगति सुमति न पावहिं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होइ सुगंध॥ १५॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब में अपत, कंटीली डार॥१६॥

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल॥ १७॥

नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होइ॥ १८॥

बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोजु बढ़ जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ॥ १९॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल बल जलु ऊंचै चढ़ै, अन्त नीच कौ नीचु॥ २०॥

तौ लघु या मन सदन में, हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटें जौ लगु निपट, खुलें न कपट कपाट॥ २१॥

भजन कह्यौ, तांते भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जाते कह्यौ, सो तैं भज्यौ गंवार॥ २२॥

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधु नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु, कुंज समीरु॥ २३॥
पतवारी मोला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसार पयोधि कौं, हरि नावैं करि नाउ॥ २४॥
यह बिरिया नहिं और की, तूं करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि॥ २५॥
अति अगाधु अति औथरौ, नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहां, जाकी प्यास बुझाइ॥ २६॥
मोर मुकट की चन्द्रिकनु, यौं राजत नंद नंद।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद॥२७॥
अधर धरत हरि कै परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इंद्र धनुष रंग होति॥ २८॥
करौ कुबत जगु कुटिलता, वजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल॥ २९॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल॥ ३०॥
समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥ ३१॥
इहि आसा अटक्यो रहतु, अलि गुलाब कै मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारन वै फूल॥ ३२॥
इक भीजैं चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, वै नै चढ़ती बार॥ ३३॥
मीत न नीति गलीतु है, जौ धरियै धनु जोरि।
खायै खरचै जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि॥ ३४॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ ॥ ३५ ॥

कर लै सूंघि सराहि हूं, रहे सबै गहि मौनु।
गंधी गंध, गुलाब की, गंवई गाहकु कौनु ॥ ३६ ॥

पटु पाख भखु कांकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं, एकै तुंहीं विहंग ॥ ३७ ॥

मनमोहन सौं मोह करि, तूं घनस्यामु निहारि।
कुंज विहारी सौं विहरि, गिरधारी उर धारि ॥ ३८ ॥

समै पलट पलटत प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ, इहि कपूत कलिकाल ॥ ३९ ॥

को छूट्यो इहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥४०॥

कीनै हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भौ मन मोहन रूप मिलि, पानी में कौ लौनु ॥ ४१ ॥

लौनैं मुहुं डीठि न लगै, यौं कहि दीनो ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना दीठि ॥ ४२ ॥

पाइ महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ ॥ ४३ ॥

अंग अंग नग जगमगत, दीप सिखा सी देह।
दिया वढ़ाएँ हूँ रहै, वड़ौ उज्यारौ गेह ॥ ४४ ॥

पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै, आनन ओप उजास ॥ ४५ ॥

ह्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि, को बलि तुम्हैं पत्याइ ॥४६॥

सोवत जागत सुपन बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसरैं हूं बिसरै न ॥ ४७ ॥
सघन कुंज, घन घनतिमिरु, अधिक अंधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम वह, दीपसिखा सी जाति ॥ ४८ ॥
मानहु बिधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग पग पोंछन कौ करे, भूषन पायंदाज ॥ ४९ ॥
कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखै, आंखि ऊजरी होति ॥ ५० ॥
छिप्यो छबीली मुंहु लसै, नीलै अंचर चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी कै नीर ॥ ५१ ॥
इन दुखिया अंखियानु कौं, सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलांहि ॥ ५२ ॥

भूषण

१

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषण जे बाज की समाज निदरत है।
पौन पाय हीन, दृग घूंघट में लीन,
मीन जल में विलीन क्यों बराबरी करत है॥
सब ते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर में धीर न धरत है।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर,
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है॥

२

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें।
भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे,
भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दतें॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द तें।
दृगजल कज्जल कलित बढ़्यों बढ़्यों मानो,
दूजा सोत तरनितनूजा को कलिन्द तें॥

३

पूरब के उत्तर के प्रबल बछांह हूँ के,
सब बादशाहन के गढ़ कोट हरते।

भूषन कहैं यों अवरंग सो वजीर जीति,
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते ।
चाकर हैं उजुर कियों न जाय नेक पै,
कछु दिन उबरते तो घने काज करते ॥

४

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हूँ पाय,
तापर कवच जो करनवारा धरिये ।
ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर,
सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये ॥
भूषन कहैं यों अवरंगजू सो उमराव,
नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिये ।
चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज,
ऐसा होय साज तौ सिवा सों जाय लरिये ॥

५

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी ।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु ब्यास के अंग सोहानी ॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी ।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥

६

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहें,
ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं ।
कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात,

भूषन भनत ऊंची सांसन जहत हैं॥
पौढ़े हैं तो पौढ़े, बैठे बैठे, खरे खरे,
हमको हैं, कहा करत, यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव वैर इमि,
साहि सब रात दिन सोचत रहत हैं॥

७

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे वार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है॥
थर थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा,
हहरि हवस भूप भरि फरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती दरकति है॥

८

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोज लौं परावने परत हैं।
गोंड़वानो तिलंगानो फिरंगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं॥
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं।
बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं।

९

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी राजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में॥
भूषन सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं॥

१०

छूटत कमान और तीर गोली बानन केहि,
मुसकिल होत मुरचान हूँ की ओट में।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बांधि पर हला बीर भट जोठ मैं।
भूषन भनत तेरी किस्मत कहां लौं कहौं,
हिम्मत यहां लगि है जाकि भट झोट मैं।
ताव दै दै कंगूरन पै पांव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूद परें कोट में॥

———

मतिराम

बूंदी-वर्णन

महलनि ऊपर जहं बने, कंचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं, गगन पीत अनुरूप ॥१॥

बीना वेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द।
सौंध सिखर ऊपर कहां, दम्पति करत अनन्द ॥२॥

जहाँ छहौं ऋतु मैं मधुर, सुनि मृदंग मृदु सोर।
संग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर ॥३॥

मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मैं जहाँ, जरकस बसन त्रिकात ॥४॥

सदा प्रफुल्लित फलित जहं, द्रुम वेलित के बाग।
अलि कोकिल कल धुनि सुनत, लहत श्रवण अनुराग ॥५॥

कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि सरिस पूरे जहाँ, वापी कूप तड़ाग ॥६॥

शुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहंस।
जहां तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतंस ॥७॥

ता नगरी को प्रभु बड़ो, हाड़ा सुरजन राव।
रच्यो एक सब गुननि को, बर विरंचि समुदाव ॥८॥

कवित्त

बाजत नगारे जहाँ गाजत गयन्द,
तहाँ सिंह सम कीनो बीर संगर बिहर हैं।
कहैं मतिराम कवि लोगनि कौं रीझि करि,
दीन ते दुरद जे चुवत मदधार हैं॥
शत्रुसाल नन्दराव भावहिं तेग त्याग,
तोसे और औनितल आजु न उदार हैं।
हाथिन बिदारिबे को हाथ हैं हथ्यार तेरे,
दारिद बिदारिबे को हाथियै हथ्यार हैं॥
जूथपति बैठ्यो पानी पोषत प्रबलमद,
कलभ करेनु कनि लीनै संग सुखतें।
ग्रह गह्यो गाढ़े वैर पीछले के बाढ़े भयो,
बलहीन विकल करन दीह दुखतें॥
कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे,
ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख तें।
दोऊ बातें छूटी गजराज की बराबर ही,
पांव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखतें॥

सवैया

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखि पच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव में मतिराम सुहायो॥
गुञ्जनि के उर मंजुल हार निकुञ्जनि तें कढ़ि बाहिर आयो।
आज को रूप लखे ब्रजराज को आज ही आँखिन को फल पायो॥

देव

१

सूनौ कै परम पद ऊनौ के अनंत मद,
नूनो कै नदीस नद इन्दिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की संपति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि व्रज बीथी बिथुरै परी।
भादों की अँधेरी आधिराति मथुरा के पथ,
पायके संयोग 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावर पूरन अपार पर ब्रह्म-रासि,
यसुदा के कौरै एक बार ही कुरै परी।
डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झँगूला सोहैं तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावै देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करै राई लोन,
कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

३

कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।

जटा मैं न मुण्डन मैं न तिलक त्रिपुण्डन मैं न,
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति मैं।
पीठ मठ मण्डन न कुण्डल न कमंडल न,
माला दंड मैं न देवदेहरे की मीति मैं।
आपु ही अपार पारावर प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रकट परमेसर प्रतीति मैं।

४

जब तें कुंवर कान्ह, रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूं सुजस कहानी सी।
तबहीं ते 'देव' देखी देवता सी हँसति सी,
खीझति सी, रीझति सी, रूसनि, रिसानी सी।
छोही सी, छली सी, छोरि लीनी सी, छकि सी छीन,
जकी सी, टकी सी, लागी थकी, थहरानी सी।
बीधी सी, बंधी सी, विष बूड़ी सी, विमोहित-सी,
बैठी वह बकति बिलोकति सी बिकानी सी।

५

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि,
हारी पायँ परि परि तऊ तैं न की संभार।
ललन बिलोकि 'देव' पल न लगाये तब,
यों कल न दीनी तैं छलन उछलहार।
ऐसे निरमोही सों सनेह बांधि हौ बंधाय,
आयु विधि बूड्यो मांझ बाधा सिंधु निराधार।
ऐरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हें अब,
एकै वार दैके तोहिं मूंदि मारों एक वार।

६

अंजन सौ रंजि निरंजनहिं जानै कहा
भीको लगै फूल रस चाखै ही जूबौड़ी को।
तूरज बजाय सूर सूरज को वेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत हौ ढौढ़ी को॥
ऊधौ पूरे पारख हौं परखे बनाय देव,
पारही पै बोरौ पेरवैया धार औड़ी को।
मनु मनिका दै हरि हीरा गाँठि बांध्यो हम,
तिन्हें तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को॥

७

बरुनी बघंबर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहे भेस रखियाँ।
बूड़ी जलही में दिन-जामिनिहू जागैं, भौंहैं,
धूम सिर जायो विरहानल बिलखियाँ॥
आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेलो संग सखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संजोगिनिसु,
जोगिनि ह्वै बैठीं ये वियोगिनि की अंखियाँ॥

८

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ पांव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौंकत नर नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सों निहारी हारि बदन निहोरतो॥

चलन न दे तो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुग चितावनीनि माँहिं मुँह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर बगारो दै गरे सों बाँधि,
राधा वर-विरद के बारिधि में बोरतो॥

९

प्रेम पयोधि परोगाहिरे, अभिमान को फेन रह्यौ गहिरे मन।
कोप तरंगनि सों बहिरे, पछिताय पुकारत क्यों बहिरे मन॥
देवजू लाज जहाज तें कूदि, रह्यौ मुख मूँदि, अजों रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहिरे मन॥

१०

जाके न काम न क्रोध विरोध, न लोभ छुवै नहिं छोम को छांहीं।
मोहन जाहि रहै जग बाहिर, माले जवाहिर तो अति चाहीं॥
बानी पुनीति ज्यों देवधुनी, रस आदर सारद के गुन गाहीं।
सील-ससी सविता-छविता, कविता हि रचै कवि ताहि सराहीं॥

———

भिखारी दास

१

वाही घरी तें न सान रहै, न गुमान रहै नर है सुघराई ।
दास न लाज को साज रहै, न रहै तनकौ घर काज की धाई ॥
ह्याँ दिख साध निवारे रहौं, तब ही लौं भटू सब भाँति भलाई ।
देखत कान्है न चेत रहै, नहिं चित्र रहै, न रहै चतुराई ॥

२

नैनन को तरसैए कहां ह्यौं, कहां लौ हियो विरहागि मैं तैए ?
एक घरी न कहूँ कल पैए, कहां लगि प्रानन को कलपैए ?
आवै यही अब जी में विचार सखी चलि सौतिहु के घर जैए ।
मान घटे तें कहा घटि है जुपै प्रान पियारे को देखन पैए ॥

३

ऊधो ! तहाँई चलौ लै हमें जहँ कूबरि कान्ह बसैं एक ठौरी ।
देखिय दास अघाय अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ॥
कूबरी सों कछु पाइए मंत्र, लगाइए कान्ह सों प्रीति की डोरी ।
कूबरी-भक्ति बढ़ाइए बंदि, चढ़ाइए चंदन वंदन रोरी ॥

४

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई-जल-संगति पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुंचे कृमि कीट निसंग अनेक बिथाई ॥
चन्दन संग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसंग लहै करुआई ।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि संगति को गुन दोसन जाई ॥

५

पंडित पंडित सों सुख मंडित, सायर सायर के मन मानै।
संतहिं संत भनंत भलौ, गुनवंतनि को गुनवंत बखानै॥
जापहँ जासह हेतु नहीं, कहिये सुकहा तिहि की गति जानै।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहचानै॥

६

प्रान विहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धर्यो बहिरे मतो करि उत्तर जो यो॥
ऊसर में बरस्यो बहु वारि पखान के ऊपर पंकज बोयो।
दास वृथा जिन साहब सूम की सेवति मैं अपनो दिन खोयो॥

७

कढ़ि कै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
लोगन को देखि दास आनँद पगति है।
दौरि दौरि जहीं तहीं लाल करि डारति है,
अंक लगि कंठ लगिबे को उमगति है॥
चमक-झमक-वारी, ठमक-जमक वारी,
रमक तमक वारी जाहिर जगति है।
राम! असि रावरे की रन में नरन में—
निलज वनितासी होरी खेलन लगति है॥

८

अँखियाँ हमारी दई मारी सुधि बुधि हारीं,
मोहूं तें जु न्यारी दास रहैं सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौं पत सयाने कौन,
लोक ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में॥

प्रेम पगी रहीं महा मोह में उमगि रहीं,
ठीक ठगि रहीं लगि रहीं वन माल में।
लाज को अँचै कै कुल धरम पचै कै वृथा,
बंधन सँचै कै भई भगत गोपाल में॥

बेनी (बंदीजन)

१

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो,
लीनी दाम थोरो जानि नई सुघरई है।
रायजू को रायजू रजाई दई राजी ह्वै के,
सहर में ठौर ठौर सोहरत भई है॥
बेनी कवि पायके अघाय रही घरी द्वैक,
कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है।
सांस लेत उड़िगो उपल्ला औ मितल्ला सबै,
दिन द्वैके बाती हेत रुई रह गई है॥

२

चींटी की चलावै को मसा के मुख आय जायँ,
सांस की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाय मरु मरु कै निहार परै,
अनु परमानु की समानता खगत है॥
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौ बखान करौं,
मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है॥

३

बियत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे,
बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन।

अकल विकल ह्वै बिकाने रे पथिक जन,
ऊर्ध्व मुख चातक अधोमुख मरालगन ॥
बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये,
सुखद संयोगिन वियोगिन के ताप तन ।
कंज-पुंज-गंजन, कृषीदल के रंजन सों,
आये मान भंजन ये अंजन बरन घन ॥

४

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे,
केते भये भूप यश छिति पर छाइगे ।
काल चक्र परे सक्र सैकरन होत जात,
कहाँ लौं गनावौं बिधि बासर बिताइगे ॥
बेनी साज संपति समाज साज सेना कहाँ,
पायन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे ।
छुद्र छिति पालन की गिनती गिनावै कौन,
रावन से बली तेउ बुल्ला से बिलाइगे ॥

५

वेद मत सोधि सोधी देखि कै पुरान सबै,
संतन-असंतन को भेद को बतावतो ।
कपटी कपूत क्रूर कलि के कुचाली लोग,
कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥
बेनी कवि कहैं मानो मानो रे प्रमान यही,
पाहन से हिय कौन प्रेम उमगावतो ।
भारी भव सागर में कैसे जीव होते पार,
जो पै रामायण नहिं तुलसी बनावतो ॥

———

पद्माकर

१

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
    क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्त है।
कहै पदमाकर परागन में पानहुँ में,
    पानन में पीक में पलाशन पगन्त है॥
द्वार में दिशान में दुनी में देश देशन में,
    देखो दीप दीपन में दीपत दिगन्त है!
वीथिन में व्रज में नवेलिन में वेलिन में,
    वनन में बागन में वगरो वसन्त है।

२

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले,
    मन्द मन्द मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै पदमाकर त्यों नादत नदीन नित,
    नागर नवेलिन की नज़र निशा की है॥
दौरत दरेरे देत दादुर सदूदैं दीह,
    दामिनि दमंकनि दिसनि में दशा की है।
बद्दलनि बुन्दनि विलोको बगुलानि बाग,
    बंगलनि बेलिन बहार बरसा की है॥

३

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
    वृन्दावन वीथिन बहार बंसीबट पै।

कहैं पदमाकर अखंड राज मण्डल पै,
मंडित उमड़ि महाकालिन्दी के तट पै॥
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि,
पाई छवि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै॥

४

जैसो तैं न मों सो कहूँ न कहूँ डरात हुतो,
तैसो अब हौं हू नेकहू न तासों डरिहौं।
कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तो,
उमंड करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु विचलु बीच ही तें,
कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा के कछार में पछार छार करिहौं॥

५

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहैं पदमाकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के वितर विचारै ना॥
दीन्हें गज वकस महीप रघुनाथ राय,
याहि गज धोखे कहूं काहु देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोयू रही,
गिरितें गरें तें निज गोद तें उतारै ना॥

गुरु गोविन्दसिंह

१

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि,
भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो।
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महा मान हो।
विद्या के विचार हो कि अद्वैत अवतार हो कि,
सिद्धता का सूर्त हो कि सिद्धता का सान हो।
जीवन के जाल हो कि कालहू के गाल हो कि,
सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो।

२

खूक मलहारी गज गदह बिभूतिधारी,
गिदुआ मसान बास कार्यो ई करत हैं।
धू धू मठ बासी लगे डोलत उदासी मृग,
तरवर सदीव मौन साधेई मरत हैं॥
बिन्दु के सिधैया ताहि ताज की बढ़ैया देत,
बन्दरा सदीव पाय नांगे ही फिरत हैं।
आंगन अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक,
ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत हैं॥

३

धन्य जियो तिन्हँ को जग में मुखतें हरि चित्त में युद्ध बिचारैं।
देह अनित्तन चित्त रहै जसुनाव चढ़ै भवसागर तारैं।

धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सुदीपक ज्यों उजियारैं।
ज्ञानहिं की बढ़नी मनु हाथ लै कायरता कतवार बुहारैं।

४

का भयो जो सबही जगजीत सुलोगन को बहु त्रास दिखायो।
और कहा जु पै देस बिदेसन मांहि भले गज गाहि बंधायो।
जो मन जीवत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथन आयो।
लाज गई कछु काल सरचो नहिं लोक गयो परलोक गमायो।

घन आनन्द

१

वहै मुसकानि वहै मृदु बतरानि वहै,
लड़काली बनि आनि उर में अरति है।
वहै गति लैनि औ बजावनि ललित बैन,
वहि हँसि दैन हियराते न टरति है॥
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैल ताई न छिनक बिसरति है॥
आनँद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुध करति है॥

२

तब ह्वै सहाय हाय कैसे धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बियोग दुःख दै चले।
सींचे रस रंग अंग अंग न अनंग सौंपि,
अन्तर में विषम विषाद-बेलि बै चले॥
क्यों धौं में निगोड़े प्रान जान धन आनँद कै,
गोहन न लागे जब वे करि बिजै चले॥
अति ही अधीर भई पीर भीर घेरि लई,
हेली मन भावन अकेली मोहि कै चले॥

३

ए रे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन वारी,
तो सों और कौन मनै ढरकौंही बानि दै।

जगत के प्रान ओछे बड़े सो समान,
धन आनँद निधान सुखदान दुखियारि दै॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोहिं प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै॥
विरह विथा की भूरी आंखिन में राखौं पूरी,
धूरी तिन पायँन की हा हा नैकु आनि दै॥

४

गुरनि बतायौ, राधा मोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायो बृन्दावन गाढ़े गहिरे।
अद्भुत अभूत, महि मंडल परे ते परे,
जीवन को लाभ हा हा क्यों न ताहि लहिरे॥
आनँद की घन छाया रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेस सों पीहापन बहिरे।
यमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे॥

५

मंजु मोर चन्द्रिका सहित सीस सांवरे के,
केसी आछी फबि छवि पाग पंच रंग की।
दारिम कुसुम के बरन भीने नीमा मधि,
दीपनि दिपति सुललित लोने अंग की॥
मंजन करत तहां मन वनितान के
निहारि, मोती मालहिं विचारि धार गंग की।
आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै मीठी,
धुनि उपजावै राग-रागिनी तरंग की॥

६

डगमगी डगनि धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुन्दर वदन पर कोटिन मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन विसाल की॥
काल्हि इहि गली अली निकस्यौ अचानक है,
कहा कहौं अटक भटक तिहिं काल की।
भिजई हौं रोम-रोम आनंद के घन छाई,
बसी मेरी आँखिन में आवनि गुपाल की॥

———

दीनदयाल गिरि

दोहे

जा मन होय मलीन सो, पर संपदा सहै न।
होत दुखी चित चोर को, चितै चन्द रुचिरैन ॥ १ ॥
तूठे जाके फल नहीं, रूठे बहुत भय होय।
सेव जु ऐसे नृपति को, अति दुर्मति ते लोय ॥ २ ॥
बहु छुद्रन के मिलन ते, हानि बली की नाहिं।
जूथ जम्बुकन तें नहीं, केहरि कहुं नसि जाहिं ॥ ३ ॥
पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुख रमत सुक बन बसै, कनक पींजरे दीन ॥ ४ ॥
तहाँ नहीं कछु भय जहां, अपनो जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुं, तरु को करत बिनास ॥ ५ ॥
नहीं रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप ते, बिना रूप विद्वान ॥ ६ ॥
सरल सरल तें होय हित, नहीं सरल अरु बंक।
ज्यों सर सुघटि कुटिल धनु, डौर दूर निसंक ॥ ७ ॥
केहरि को अभिषेक कब, कीन्हों बिप्र समाज।
निज भुजबल के तेज तें, बिपिन भयो मृगराज ॥ ८ ॥
इक बाहर इक भीतरें, इक मृदु दुहु दिसि पूर।
सोहत नर त्रिविध ज्यों, बेर बदाम अंगूर ॥ ९ ॥
वचन तजैं नहिं सत पुरुष, तजैं प्रान बरु देस।
प्रान पुत्र दुहुँ परिहयौ, वचन हेत अवधेस ॥ १० ॥

कुण्डलिया

बरखै कहा पयोद इत, मानि मोद मन माहिं !
यह तो ऊसर भूमि है, अंकुर जमि हैं नाहिं ॥
अंकुर जमि हैं नाहिं, बरस शत जल जो दैहैं ।
गरजै तरजै कहा, बृथा तेरौ श्रम जैहैं ॥
बरनैं दीनदयाल, न ठौर कुठौरहिं परखै ।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्यां तू बरखै ॥ १ ॥

भौंरा अन्त बसन्त के, हैं गुलाब इहि रागि ।
फिरि मिलाप अति कठिन है, या बन लगे दवागि ॥
या बन लगे दवागि, नहीं यह फूल लहैगो ।
ठौर हि ठौर भ्रमात, बड़ो दुख तात सहैगो ॥
बरनैं दीनदयाल, किते दिन फिरि है दौरा ।
पछितैहै कर दए गये ऋतु पीछे भौंरा ॥ २ ॥

रम्भा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत ।
तुम से केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं इहि खेत ॥
अरु ह्वै हैं इहि खेत, मूल लघु साखा हीने ।
ताहू पै गज रहै, दीठि तुम पै प्रति दीने ।
बरनैं दीनदयाल हमैं लखि होत अचम्भा ।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमति रम्भा ॥ ३ ॥

नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुंजार ।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार ।
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये ।
लुवैं चलेंगी संग, अंग सब जैहैं ताये ॥

बरनैं दीनदयाल, फूल जौं लौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ घेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥ ४॥

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय, चहूं दिसि जम्बुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करैं सब राजैं॥
बरनैं दीनदयाल, हरिन बिहरैं सुख लूटैं।
पंगु भयौ मृगराज आज नख-रद के टूटैं॥ ५॥

घनाक्षरी

छोड़्यो गृहकाज कुललाज को समाज सबै,
एक ब्रजराज सों कियोरी प्रीतिपन है।
रहत सदाई सुखदाई पद पकज में,
चंचरीक—नाईं भाई छांड़े नाहिं छन है॥
रति पति मूरति बिमोहन को नेम धार,
लिखै प्रेम रंग भरि मति के सदन है।
कुँवर कन्हाई की लुनाई लखि भाई मेरो,
चेरो भयो चित्त औ चितेरो भयो मन है॥

———